यूनिवर्सिटी रिव्यू

राम-चरित-मानस चतुःशती महोत्सव के उपलक्ष्य में

तुलसी विशेषांक
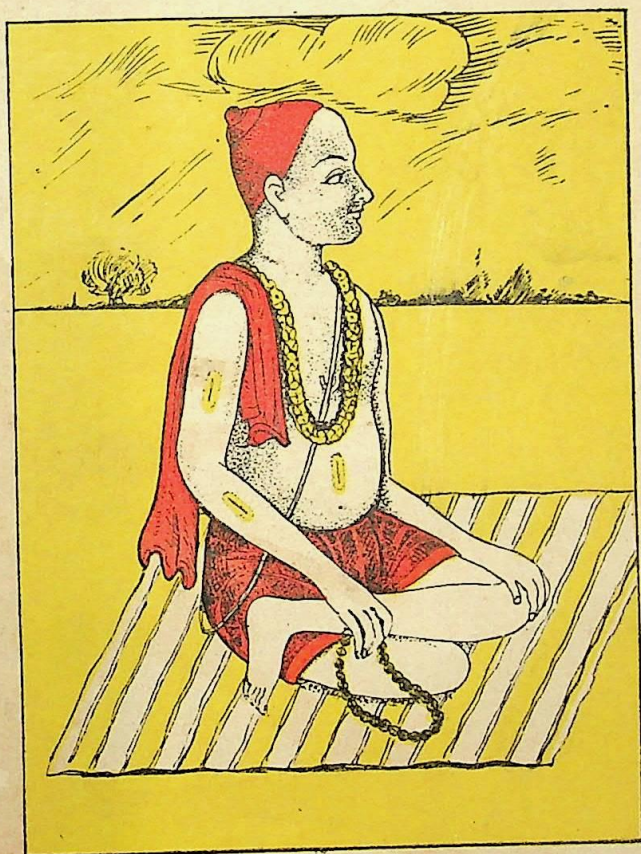
१९७३

स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग

जम्मू विश्वविद्यालय,

जम्मू तवी (जम्मू कश्मीर)

संरक्षक :

डॉ० जे० एन० भान

संचालक :

डॉ० संसार चन्द्र

प्रबन्धक सम्पादक :

डॉ० ओमप्रकाश गुप्त

परामर्श समिति :

डॉ० विद्या नाथ गुप्ता

डॉ० जनक गुप्ता

डॉ० प्राणनाथ, तृछल

प्रकाशक :

जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू ।

मुद्रक :

शक्ति प्रिंटिंग प्रेस, जम्मू ।

अनुक्रमणिका

१.	मध्य युगीन शीत संक्रमण का विषज्वर : तुलसी की समन्वय संजीवनी	डॉ० संसार चन्द्र ...	
२.	तुलसी और मानवता-एक विहङ्गम दृष्टि	श्री मूलचन्द शर्मा ...	११
३.	राष्ट्र पुरुष—तुलसी दास	डॉ० विद्यानाथ गुप्त ...	१६
४.	गोस्वामी तुलसी दास और संस्कृत भाषा	प्रो० बाल कृष्ण शास्त्री...	२१
५.	तुलसी और नारी	डॉ० जनक गुप्ता ...	२९
६.	प्रकाश राम कृत रामायण और तुलसी	श्री चमनलाल सपरू ...	३५
७.	तुलसी की भाषा	डॉ० प्राणनाथ तृछल ...	४०
८.	'मानस' में आक्रोश के स्वर	डॉ० ओमप्रकाश गुप्त ...	४६
९.	तुलसी काव्य में संगीतात्मकता	डॉ० जगदीश राम शर्मा...	५४
१०.	तुलसी इतिवृत्त की प्रामाणिकता	कु० सुभाष गुप्ता ...	६०
११.	उक्ति साहित्य और तुलसी दास	श्री प्रिंस मोहन ...	७२
१२.	गोस्वामी श्री तुलसी दास का वैज्ञानिक ज्ञान	श्री श्याम नारायण राय...	७७
१३.	तुलसी का काव्य सम्बन्धी दृष्किोण	विमला गुप्त ...	८६
१४.	तुलसी के राम	कुमारी मृदुला खन्ना ...	९५
१५.	तुलसी के काव्य में अलंकार	श्री सुरेन्द्र कोहली ...	१०१

मध्ययुगीन शीत संक्रमण का विषज्वर : तुलसी की समन्वय संजीवनी

डा० संसार चन्द्र

हिन्दी साहित्य का संपूर्ण मध्ययुग संक्रमण के विषदंश से मूर्च्छाग्रस्त युग है। इस युग में राजनैतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक इन सभी क्षेत्रों में संक्रमण का विष समग्ररूप से परिव्याप्त है। यह विष एक भीषण संक्रामक ज्वर के रूप में फूटता है जो आदि युग में अत्यन्त उग्र और विषम रूप में आक्रमण करता है। आक्रमणकारियों द्वारा किये गये निर्मम एवं नृशंस हत्याकाण्डों, तथा पैशाचिक क्रूर दानवीय कुकृत्यों में इस ज्वर का विषम रूप मिलता है। ऐसा विषम रूप जो अपनी प्रारम्भिक गति में शीतमंद है परन्तु परिणाम में सर्वथा उत्तप्त एवं त्वरित। वीरगाथा काल में संक्रमण ज्वर का ऐसा ही रूप मिलता है। इसका प्रारम्भिक प्रभाव शीत है किन्तु कालान्तर में वह प्रचण्ड आग्नेय रूप धारण कर लेता है और हमारा समूचा राष्ट्र उस विषम ज्वर की पीड़ा से विकलाँग होने लगता है।

पूर्व मध्ययुग में यह ज्वर विधिवत् उपचारित न होने पर बिगड़ जाता है और इसकी उत्तप्त विषमता एक भयंकर रूप में परिणति पाती है। यह है इसका शीतरूप। वस्तुतः जिस प्रकार गर्मयुद्ध की अपेक्षा शीत युद्ध अधिक विनाशकारी है, उसी प्रकार शीत संक्रमण उत्तप्त संक्रमण की अपेक्षा अत्यधिक विध्वंसक है। भक्तिकाल में ऐसे ही संक्रमण ज्वर की विभीषिका के दर्शन होते हैं। आदि-काल में ही आक्रमणकारी अपनी प्रभुत्व स्थापना में पर्याप्त सफल हो जाते हैं। भारत की सभी राष्ट्र--समर्थक शक्तियाँ सर्वथा पराभूत होकर उनके आगे घुटने टेक देती हैं और भारत में विदेशी शासन स्थापित हो जाता है। इस समय बाह्य आक्रमणों की बाढ़ तो मन्द पड़ जाती है परन्तु देश में ही स्थापना प्राप्त विदेशी सत्ता भारतीय जनता के गम्भीर शोषण में तथा उसे पादाहत करने में बुरी तरह जुट जाती है। यहीं से शीत संक्रमण का समारम्भ होता है। विदेशी सत्ता राजनैतिक सत्ता की स्थापना के उपरान्त अपने धर्म की प्रतिष्ठा के लिए उग्र प्रयत्न प्रारम्भ करती है। पहले वह बाहर से आकर भारत को लूटती थी, अब वह यहीं रह कर उसका निर्मम शोषण आरम्भ करती है। वह भारत में सभी तरह से निजी का प्रभुत्व स्थापित करना चाहती है। अपना धार्मिक सांस्कृतिक एवं सामाजिक वैशिष्ट्य सिद्ध करने के लिये वह दण्ड, भेद, प्रलोभन आदि का सहारा लेती है। जनता को राजधर्म में दीक्षित करने के लिए वह अनेक प्रकार की छद्म छलनाओं को स्वीकार करती

है। इस प्रकार के नानाविध दमनचक्रों के अतिरिक्त विदेशी शासन सत्ता अपने राज्य की नींव को सुदृढ़ करने के लिए एक ओर तो बाह्य आक्रमणों का सामना करती है और दूसरी ओर देश में आन्तरिक व्यवस्था बनाये रखने के लिए भी उत्साहित करती है। किसी प्रत्यक्ष संघर्ष एवं युद्ध की अनुपस्थिति में भी यह संक्रमण चक्र चलता रहता है। यह बात अलग है कि उसकी गति अपेक्षाकृत मन्द थी परन्तु वह जितनी मन्द थी उसका प्रभाव उतना ही अधिक सांहारिक और विध्वंसक था। मुगल शासन में भी संक्रमण का ऐसा ही शीत रूप समग्र भारतीय समाज को ग्रस लेता है। यद्यपि इस युग में भी शासकों ने देश में शान्ति स्थापना के तथा बाह्याक्रन्ताओं से उसकी सुरक्षा के छुटपुट प्रयत्न जारी रखे। वास्तव में इस ढंग से शासक वर्ग जनता की कृतज्ञ मन:स्थिति का लाभ उठाते हुए अपनी धर्म निरपेक्षिता का दम्भ रचना चाहते थे जिसमें कुछ सीमा तक सफल भी हो गये।

वीर गाथाकाल में तो इस संक्रमण ज्वर का प्रारम्भिक प्रकोप ही मिलता है। इससे देश इतना प्रकम्पित नहीं होता क्योंकि उसकी धमनियों का रक्तबल इस ज्वर को इतनी सरलता से अपने ऊपर अधिकार जमाने से रोकता है परन्तु जैसे जैसे राष्ट्र पराभूत होता है, उसकी शक्ति क्षीण होती है, उसकी शिराओं का रक्त ज्वार मन्द पड़ने लगता है, त्यों-त्यों संक्रमण ज्वर का प्रकोप बढ़ने लगता है। यहां दो बातें ध्यातव्य है। एक ओर तो यह ज्वर उत्तरोत्तर घातक रूप धारण कर रहा है, दूसरी ओर राष्ट्र अपनी निरन्तर पराभूत स्थिति के कारण अशक्त और दुर्बल हो रहा था। फलत: संक्रमण ज्वर का तीव्र विष इस जराजीर्ण रक्तहीन समाज में गहरा रच जाता है। उसके रोम रोम, पोर-पोर, गाँठ-गाँठ में समा जाता है। अत: भक्तिकाल के प्रारम्भ में ही एक अविराम ठिठुरन से आन्दोलित संक्रमण ज्वर शैत्य पराभूत भारत खण्ड को झकझोर देता है। जिसके घातक प्रभाव से समाज मूर्च्छित होने लगता है।

इसमें वैमत्य नहीं कि संक्रमण ज्वर का शीत प्रकम्पन अत्यधिक सांहारिक था क्योंकि एक ओर तो उसमें वीरगाथा कालीन संघर्ष चक्र की युद्धोत्तर विकृत परिणतियाँ थीं तो दूसरी ओर समसामयिक शीत संघर्ष की तद्‌युगीन विषम परिस्थितियाँ भी विद्यमान थीं।

प्रस्तुत संक्रमण ज्वर की अनेक स्तरों पर जो भयंकर परिणतियाँ प्रकट होती हैं उनमें प्रमुख हैं अनास्था, अविश्वास, अनिष्ठा, संशय, आतंक, विघटन, अकर्मण्यता, मृत्यु संत्रास, क्षण-भंगुरता की पीड़ा, भाग्यवादिता आदि आदि। इनसे स्पष्ट है कि भक्तिकाल के प्रारम्भ में ही पराभूत देश अन्दर बाहर से कितना बिखर चुका था, टूट और गिर चुका था।

मैं सम्पूर्ण भक्ति आन्दोलन को संक्रमण-ज्वर ग्रस्त समाज के उपचार का मनोवैज्ञानिक अभियान मानता हूँ। जैसे राजा वेणु के शापकामृत्युज्वर उतर जाता है और उसके शरीर से एक दिव्य पुरुष निकलता है, जो महाराज पृथु के नाम से सम्पूर्ण भारतखंड का भौगोलिक सर्वेक्षण करता है, उसकी विधिवत् व्यवस्था करता है, ठीक वैसे ही सन्तों भक्तों का एक पूरा दल देश तथा समाज के उपचार में जुट जाता है। उसकी मूर्च्छा-भंग करने के लिए नाना विध उपचार करता है। मल-मल कर उसकी धमनियों में रचे ज्वर को उलीचना चाहता है कि उत्तरोतर

विकलांग हो रहा समाज सम्पूर्ण स्वास्थ्य लाभ कर उठे। अतः सम्पूर्ण भक्ति आन्दोलन इस शीत ज्वर के उपचार का एक विशद अभियान है।

तुलसी के उपचार को इसकी सम्पूर्णता में जानने के लिए उनके पूर्वकालीन एवं समकालीन सन्तों-भक्तों के उपचार की चर्चा भी आवश्यक है, तभी इसके उपचार की विशिष्टता और सर्वोपरिता स्पष्ट हो पायेगी। इसके अतिरिक्त मेरी दृष्टि में तुलसी का व्यापक उपचार इस क्रम का अन्तिम उपचार है। अतः तुलसी पूर्व कालीन उपचार के क्रमिक रूप और रोगी की ढलती उतरती दशा की सटीक चर्चा इस प्रकार की अनिवार्यता सी प्रतीत होती है। इससे बचकर की गई कोई भी बात न तो रोगी की गम्भीर दशा और रोग की भयंकरता को स्पष्ट कर पायेगी और न ही विविध उपचारों के स्वरूपों और सीमाओं को ही।

मेरी दृष्टि में कबीर इस रोगी समाज के प्रथम उपचारक हैं। उनके युग में रोगी में शीतप्रकम्पन अधिक था। वह इस ठिठुरन से कराह उठता था। उसका शरीर शिथिल और नीला पड़ता जा रहा था। साँस्कृतिक संक्रमण को रोकने के लिए समाज के उच्च वर्ग की ओर से अन्य वर्गों पर केवल इसलिए कि भारतीय समाज का स्वरूप यथावत् बना रहे अनेक प्रतिबन्ध लगाये जा चुके थे। यह स्थिति ठीक वैसी थी जैसी कि भयंकर आँधी तूफान में घर के दरवाजे खिड़कियां और रौशनदान बन्द करने पर रहती है। ऐसे सीलन भरे मकान में समाज का रोगी-रूप और भी अधिक चिन्तनीय बन जाता है। कबीर इस क्षीणकाय रोगी को पाखण्डों के आवरणों से निकालते हैं। मैं इसे मरीज के पुराने रोगग्रस्त कपड़े बदलने के बराबर मानता हूं। यह प्रारम्भिक सफाई किसी भी उपचार के लिए आवश्यक है। साथ ही कमरे के दरवाजे कम से कम उतने अनुपात में अवश्य ही खोलते हैं कि रोगी स्वच्छ हवा में खुली सांस ले सके। यहां एक और बात भी विशेष ध्यातव्य है। आक्रमणों की भयंकर आंधी; वर्षा वीर-गाथाकाल में ही रहती है। उस युग में दरवाजों का बन्द होना सामाजिक आवश्यकता था परन्तु भक्तिकाल में तो केवल मन्द वर्षा ही थी, बौछाड़ बहुत ही कम। हां बादलों का घटाटोप बड़ा ही भयंकर था जो एक प्रलयकारी बरसाती झड़ी का पूर्व संकेत देता था। कबीर ऐसी झड़ी में सब दरवाजों को बन्द रखना संगत नहीं समझते। वह एक और बात भी कहते हैं जिसे मैं एक नये ढंग से इस प्रकार कहूँगा कि हे भाई हे साधु ! वर्षा में जब अधिकाँश कोठड़ियां टपक रही हैं, आप सब लोग ऊंच नीच का भेद भाव भूलकर किसी एक सुरक्षित छत के नीचे सिर छिपा लो। हे भाई ! यह वर्षा-झड़ी दो-एक दिन की नहीं; बादल बहुत गहरे हैं। पता नहीं कब छटेंगे।

कबीर की वाणी का मुख्यतः यही समन्वय संदेश था। कबीर के युग में समाज के शरीर में अनेक बीमारियाँ थी, जिनको मैंने उस युग की भयंकर परिणतियों के रूप में पीछे चर्चित किया है। इनमें कौन कौन मुख्य अथवा गौण हैं, कौन सी घातक अथवा कष्टकारक हैं, मूल रोग क्या है ? यह सभी कुछ कबीर पूरी तरह नहीं जान पाए। उन्होंने सर्व धर्मीयता एवं सर्व जातीयता का एक मिक्स्चर दिया जो रोग के प्रकाश को तो मन्द करता है किन्तु उसका उन्मूलन नहीं करता।

जायसी के युग में रोग के लक्षरण कुछ अधिक उभर आते हैं, यद्यपि रोगी की प्रारम्भिक अकुलाहट कुछ मन्द हो जाती है तथापि इसे रोग निवृत्ति का लक्षरण नहीं समझना चाहिए। वस्तुत: रोगी इतना क्षीरण और दुर्बल हो चुका था कि उसे निरन्तर अकुलाने में भी कष्ट अनुभव हो रहा था। इसीलिए जायसी कबीर की तरह न तो चीरफाड़ की शल्य क्रिया में ही विश्वास रखते हैं और न ही कड़वी गोली देने में। वह प्रेम-रस भरी मीठी गोलियां देते हैं। मिठाई की मिठाई और दवाई को दवाई। उनकी कथाओं का मनोरंजक पक्ष उनके संदेशपक्ष की अपेक्षा अनुपात में अधिक है। वह समाज के तत्वों की अनुपात हीनता और विषमता को प्रेम से शांत करने में लीन रहे। विरोधशाँति में ही समाज स्वास्थ्य लाभ कर सकता है ऐसा था उनका विश्वास और उनके उपचार का उद्देश्य। कबीर का उपचार अधिकाँशत: निर्गुण मूलक था। उसमें एक अत्यल्प सगुणात्मकता भी थी। किन्तु जायसी के उपचार में यह अनुपात उतना ही विपरीत हो जाता है। कबीर में निर्गुण तत्व प्रधान था परन्तु जायसी में सगुण, जिसकी मूल चेतना कथात्मक प्रकार की थी। कबीर में जितना सगुण का अंश था उतना ही जायसी में निर्गुण का। सगुण अंश की प्रधानता के होते हुए भी जायसी की परिगणना निर्गुण धारा में ही होगी क्योंकि उनकी यह सगुणात्मकता साधनात्मक कोटि की न होकर प्रचारहित स्वीकार की गई दृष्टाँतिकता ही है। कबीर में भी सगुण का यही रूप मिलता है।

इसी रोगी का उपचार करने सूर आगे आते हैं। तब तक रोग उलझ जाता है। एक ओर उसका मूल रोग बिगड़ता है, दूसरी ओर रोगी के अपथ्य से और भी ऐसे रोग उभर आते हैं जो प्रारम्भ में विद्यमान नही थे। जायसी की औषधियों में मीठा कुछ अधिक ही डल गया था, इसका एक परिणाम तो बहुत ही स्पष्ट रूप में सामने आता है-वह यह कि मीठी दवाई का अभ्यस्त रोगी कड़वी दवाई लेने को तत्पर नहीं होता। जायसी को कथाओं का मनोरंजक पक्ष इतना प्रबल था कि उसकी मूलज्ञान चेतना ही उसमें से विलुप्त होने लगी थी, मानो शीशी का कार्क खुला रह जाने के कारण दवाई का असर उड़ चुका था और पेय में केवल मिठास ही अवशेष थी। रोग निवृत्ति के लिए यह कितनी उपयुक्त थी, यह सहज ही अनुमानित हो सकता है।

सूर का उपचार सर्वथा उनका अपना नहीं था। वह और उनके अष्टछाप के अन्य साथी, पुष्टि दर्शन के अनुसार ही रोगोपचार में लीन होते हैं। सूर रोगी की मीठे की प्रति कमजोरी से भली भाँति परिचित थे। अत: उन्होंने मिठास का पूर्णतया बहिष्कार तो नहीं किया, परन्तु उसका अंश कम अवश्य कर दिया। इसके अतिरिक्त उसमें एक न उड़ने वाली दवाई भी मिला दी। मेरा अभिप्राय उनके वात्सल्य और शृंगार निरूपण से है। यह सगुण तत्व जायसी के सगुण तत्व की तरह केवल दृष्टान्त मात्र ही नहीं था प्रत्युत सूर साधना का मूलाधार था। सूर का कृष्ण अपने सभी रूपों में आराध्य है। वह माध्यम नहीं, सिद्धि है-जबकि जायसी में सम्पूर्ण रूपक-योजना अन्योक्ति परक है-मात्र माध्यम है।

जायसी में खण्डन का अभाव है परन्तु कबीर में उसका प्रखर रूप है। सूर भी अपने उपचार में खण्डन की आंशिक अनिवार्यता स्वीकार करते हैं। कबीर का खण्डन रोगी से सम्बन्धित

था, किन्तु सूर का खण्डन पूर्ववर्त्ती उपचारकों के उपचार से। सूर पूर्वकालिक उपचारों की आलोचना से अपने रोगी का विश्वास जीतने का सफल प्रयत्न करते हैं। भ्रमरगीत ऐसा ही एक प्रयास था, यही कारण है कि अष्टछाप के सभी कवि भ्रमरगीत की रचना करते हैं। अतः भ्रमर गीत निर्गुण ज्ञान और योग के अनपेक्षित रूप के विरुद्ध एक योजनाबद्ध एवं सामूहिक अभियान था। कहना न होगा कि ऐसे साधनागत सगुणात्मक उपचार से भारतीय जनजीवन ने विशेष स्वास्थ्य लाभ किया, परन्तु तनिक से अपथ्य से सुधारोन्मुख रोग पुनः बिगड़ जाता है। यही अपथ्य सूर युगीन समाज ने कृष्ण के रसिकेश एवं शृंगार शिरोमणि रूप को लेकर किया, इसी अपथ्य की विकृतियाँ शृंगार काल में विस्तार पाती हैं।

तुलसी के आगे जो रोगी आता है, उसकी दशा सर्वथा शोचनीय होती है। सन्निपात के प्रकोप से वह मूर्छित है। एक विशाल हिमशिला के अनुरूप निस्पंद, निष्प्राण एवं निश्चेष्टा वास्तव में ऐसे असाध्य रोगी पर ही किसी धन्वन्तरि वैद्य की परीक्षा होती है जो अन्ततः उसमें पूरा उतरता है। तुलसी ऐसे ही सुयोग्य वैद्य हैं जो इस अग्नि-परीक्षा में निर्भय कूद पड़ते हैं। रोग का संतुलित निदान उनकी प्रथम सफलता है। वह पूर्ववर्त्ती उपचार प्रक्रिया का पूरा जायजा ले लेते हैं। वह समझते हैं कि सूर का उपचार वैसे तो सर्वथा संगत ही था परन्तु अपथ्य से रोगी की दशा बिगड़ गयी है। इसलिए तुलसी की प्रारम्भिक चिकित्सा अपथ्य जन्य रोगों के निवारण से प्रारम्भ होती है। इसी कारण वह सूर की उपचार योजना में विश्वास रखते हुए भी सगुण साधना के आश्रय का परिवर्तन करते हैं। कृष्ण के रसिकेश रूप के स्थान पर वह राम के शील-शक्ति सौन्दर्य समन्वित रूप की झाँकी प्रस्तुत करते हैं, कृष्ण के अनंकुश रूप के स्थान पर राम का मर्यादित रूप प्रस्तावित करते हैं। वह सूर के उपचार को ही और अधिक सुनियोजित रूप में स्वीकार करते हैं। वह भी योग, ज्ञान और निर्गुण को अस्वीकार करते हैं। परन्तु सूर की भाँति उनका तिरस्कार नहीं करते। भ्रमर गीत के माध्यम से न तो उनका उपहास उड़ाते हैं और न ही उनकी अनुपयोगिता सिद्ध करते हैं। तुलसी उन्हें समन्वय में स्वीकार करके ही अस्वीकार करते हैं। उन्हें परस्पर परिपन्थी न मानते हुए उन्हें सहचारी मानते हैं। उनके महत्व को स्वीकार कर प्रकारांतर से अपनी उपचार साधना का ही अंश मान लेते हैं। इसीलिए वह निर्गुण-सगुण में अभेद-सम्बन्ध स्थापित करते हैं। मैं इसे तुलसी को अपने पूर्व-वर्ती अथवा समकालीन सम्प्रदायों के प्रति ईमानदारी मानता हूं। वह अपने पूर्ववर्ती उपचारकों की निन्दा में विश्वास नहीं रखते। इसीलिए वह स्पष्टतः कबीर, जायसी, सूर की तनिक भी आलोचना नहीं करते।

आत्मीयता का यह उत्फुल्ल स्वर तुलसी के उपचार की मूल चेतना है। उनकी समन्वयशील चिकित्सा समाज के सभी अंगों में सन्तुलन स्थापित करना चाहती है। कफ-पित्त-वात आदि में जब तक अपेक्षित एवं आनुपातिक संगति नहीं बैठती, तब तक रोग-मुक्ति सभव नहीं। अतः तुलसी अपनी समन्वय संजीवनी द्वारा कबीर, जायसी तथा सूर द्वारा किए गए अनुपात भंग को ठीक स्थिति पर लाने का प्रयत्न करते हैं। इसीलिए उन्होंने समाज एवं धर्म के विविध

क्षेत्रों में सामञ्जस्य एवं समन्वय का संदेश दिया। वर्णाश्रम व्यवस्था, शासन-व्यवस्था, व्यक्ति परिवार और समाज की व्यवस्था, मानवीय सम्बन्धों की व्यवस्था, ज्ञान भक्ति का, निर्गुण-सगुण का, शील-शक्ति सौन्दर्य का समन्वय इसी अनुपात-स्थापना के लिए किया गया।

मेरा उद्देश्य तुलसी के समन्वय के व्यावहारिक रूप की सोदाहरण चर्चा करना नहीं। तब मेरी चर्चा पूर्णतया प्राध्यापकीय हो जाएगी। मैं तो तुलसी के उपचार को एक क्रमिक सन्दर्भ में प्रस्तुत करना चाहता हूं। यह ऐतिहासिक सत्य है कि तुलसी के उपचार से ही भारतीय समाज सक्रमण के शीत ज्वर की पीड़ा से मुक्त होता है तथा समन्वय की संजीवनी से ही उसकी मूर्छा टूटती है और वह स्वास्थ्य लाभ करने लगता है।

तुलसी और मानवता--एक विहगंम दृष्टि

डा० मूलचन्द शर्मा

मानवता की परिभाषा :—

'मानवता' के अर्थ को जानने के लिये 'मानव' शब्द और उसके पर्याय भूत अन्यान्य शब्दों का निर्वचन जानना आवश्यक है। संस्कृत कोशों के अनुसार 'मानव', 'मनुष्य', 'मानुष' और 'मनुज आदि सभी शब्द समानार्थक हैं, जो मूल धातु 'मनु ज्ञाने या मनु अवबोधने' से निष्पन्न होते हैं। तत्तद्-विकारविशेषों के कारण वेद-निरुक्त आदि ग्रन्थों में उक्त शब्दों के जो सर्वमान्य निर्वचन किये गये हैं, वे धात्वर्थ के साथ-साथ अन्यान्य कई रहस्यों का भी उद्घाटन करते हैं। जैसे :—

मनोरपत्यं पुमान् मानवः। मननान्यनुष्यः। मत्वा कर्माणि सीव्यन्तीति मनुष्याः। 'मादुषमेव सन्तं परोक्षेण मनुष्ययाचक्षते।' मनोजीता मनुजाः। अर्थात् मनु की सन्तति होने के कारण मानव शब्द का प्रवचन हुआ। या जो ज्ञानपूर्वक सब कार्य करें वे मनुष्य कहे जाते हैं। या मा=मत, दुष= दोष जिस में हो उसे ही परोक्षभाषा में 'मादुष' के स्थान पर 'मनुष्य' कहते हैं। या आदिम विधान निर्माता वृद्धमनु से उत्पन्न समाज का व्यक्ति मनुज शब्द वाच्य है। इन्हीं वृद्धमनु का दूसरा पर्याय 'जरद्मनु' बिगड़कर 'हजरतनुह' बन गया जो कुरान, बाइबल आदि में सृष्टिकर्ता माना गया है। अर्थात् धात्वर्थ के अनुसार मानव की सीधी परिभाषा यही हो सकती है कि जिस व्यक्ति की सभी चेष्टाएँ ज्ञान पर आधारित हों वह मानव है। मानव चोले को धारण करने मात्र से ही मानव नहीं बनता है बल्कि जो पहले मनन करता है फिर क्रिया में प्रवृत्त होता है वही प्राणी मानव शब्द वाच्य है। मानव शब्द के आगे भाववाचक 'ता' प्रत्यय जोड़ने से यौगिक शब्द 'मानवता' सिद्ध होता है। इसलिये मानवता का साधारण अर्थ है मनुष्यत्व, मनुष्यपन। दूसरे शब्दों में इसे इन्सानियत के नाम से भी पुकारा जाता है।

मनुष्य योनि चौरासी लाख योनियों की सिरमौर मानी गई है, क्योंकि मनुष्य का वास्तविक कर्तव्य और उद्देश्य सभी जन्तुओं से उत्तम है, 'सोपान भूतं मोक्षस्य मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम्' अर्थात् मोक्ष का अधिकारी केवल मानव है किन्तु मानव शरीर दुर्लभ है। तभी तो बाईबल में कहा है—"God

created man in his own image" अर्थात् ईश्वर ने मनुष्य को अपने ही रूप में उत्पन्न किया है, अतः एवं ब्राह्मणों, उपनिषदों और वैदिक मन्त्रों में इसकी महत्ता मुक्त कंठ से गाई गई है। मनुष्य प्रजापति की सृष्टि में प्रजापति के निकटतम है:—पुरुषो वै प्रजापतेर्नेदिष्ठम् । (शत० ४।३।४।३) 'नेदिष्ठ' का अर्थ निकटतम है। दूसरे स्थान पर तो शतपथ ब्राह्मण ने इसे प्रजापति ही बताया है :—पुरुषः प्रजापतिः (शत० ६।२।२।२।३) इसके अतिरिक्त 'प्राजापत्यो वै पुरुषः ।' (तैत्ति० २।२।५।३) उपनिषद् में आख्यान आता है कि ईश्वर ने सृष्टि के समय उसे गाय, अश्व दोनों के शरीर दिखलाये—जीव ने कहाँ— यह मुझे नहीं चाहिये—तब मानव-शरीर उसे दिखाया गया। उस समय जीव ने कहा—हां, यह सुन्दर है। अभिप्राय यह है कि जीवन के लिये मानव-शरीर ही चरम विकास का एक यन्त्र साधन है।

मानव शरीर प्रकृति की सर्वोत्कृष्ट कला कृति है परन्तु इसको प्राप्त करना सहज नहीं, 'दुर्लभ मानुषं जन्म' अर्थात् संसार में सभी पद स्वल्प प्रयास से प्राप्त हो सकते हैं, परन्तु मानव पद प्राप्त करना सर्वथा दुर्लभ है।

यों तो आज भी जनगणना पत्रिका में कोष्ट पूर्ति करने वाले तीन अरब से भी अधिक मानव कहे जाते हैं, परन्तु यदि मानवता की शास्त्रनिर्दिष्ट कसौटी पर इसे कसकर देखा जाय तो वे पूरे नहीं उतरेंगे। त्रेता युग जैसे धर्म प्रधान युग में भी जब धर्म अपने तीन चरणों पर खड़ा था, एक भी पूर्ण मानव' न था। तुलसीकृत रामचरितमानस के अनुसार जब रावण के तप से संतुष्ट हुए पितामह ने यथेच्छ वर मांगने के लिये कहा, इस पर उसने 'रावन मरन मनुज कर जाचा। प्रभु-बिधि वचनु कीन्ह कह साचा।' अन्य सब प्राणियों से अवध्य किन्तु केवल मानव द्वारा ही बाध्य होने का वर माँगा। वेदशास्त्र पारंगत रावण का यह प्रयास अविवेक-निजृम्भित नहीं था। वह अच्छी तरह जानता था कि देव, दानव, दैत्य, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर आदि में कोई 'पूर्ण मानव' नहीं है। निकट भविष्य में भी कोई 'पूर्ण-मानव' उत्पन्न नहीं हो सकता। अतः अन्य सब से अवध्य केवल मानव द्वारा वध्य होने के कारण वरदान के मिलने पर रावण अपने आपको सर्वथा और सर्वदा अवध्य जान कर संसार में अत्याचार करने लगा था।

यह स्मरण रखना चाहिये कि रावण का विचार बिल्कुल सत्य पर आधारित था। उस समय वशिष्ठ, विश्वामित्र जैसे ब्रह्मज्ञानी, मन्त्रद्रष्टा ऋषि विद्यमान थे। परशुराम, कार्तवीर्य जैसे दिग्विजयी वीर तथा अष्टावक्र, याज्ञवल्क्य, जनक जैसे सर्वज्ञ भी विद्यमान थे। परन्तु उन सब में एक भी मानवपद को प्राप्त न कर सका था। यदि उन में से कोई भी मानव होता तो वह रावण को अवश्य मार डालता, रावण अपने आप को अवध्य समझ कर घोर अत्याचार न कर पाता। यदि कोई 'मानव' विद्यमान होता तो उसके इतने भयानक अत्याचार सहन नहीं कर सकता था। तभी तो तुलसी कृत रामचरित मानस के अनुसार—

'सुर मुनि गन्धर्वा मिलि करिगे विरंचि के लोका।
संग गोतनु धारी भूमि विचारी परम विकल भय सोका।।

सब सुर, मुनि, आदि को ब्रह्मलोक तक दौड़धूप करने की आवश्यकता पड़ी थी और त्रेतायुग में मानवभाव के कारण रावण का अन्यथा वध असम्भव समझकर षोडशकला सम्पूर्ण अजन्मा भगवान् को ही—

'जनि डरपहु मुनिसिद्ध सुरेसा।
तुम्ह हिलागि धरिहउँ नर वेषा॥
असन्ह सहित मनुज अवतारा।
लेहउँ दिनकर वंस उदारा।

मनुज रूप में स्वयं अवतरित होना पड़ा।

यह यथ्य है कि मानुषरूप समस्त देवी देवताओं से श्रेष्ठ तथा सर्वोत्तम माना जाता है, क्योंकि देवता लोग अपने पद से च्युत हो जाते हैं। जब उनके सत्कर्म क्षीण हो जाते हैं उन्हें मर्त्य योगभ्रष्टेऽविभायते।' सकाम कर्म करने के स्थान पर निष्काम कर्म करने पर 'मानव' परमात्मा बन सकता है। अतः समस्त जगत् में उन्नतिशील यदि कोई जीव है तो वह केवल मनुष्य ही है। इसीलिए देवता लोग भी मनुष्य जन्म के लिये लालायित रहते हैं।

'दुर्लभं मानुषं जन्म प्रार्थ्यते त्रिदशैरपि।
तल्लध्वा परलोकार्थ यत्नं कुर्याद् विचक्षणः॥

मुक्ति का अधिकारी केवल 'मानव' है देवता नहीं। इस विषय में तुलसीदास कहते हैं:—

बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुरन्दुर्लभ सबग्रंथ ही गावा॥
साधनधाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहि परलोक संवारा॥

विनय पत्रिका में भी तुलसी दास जी यह रट लगाते हैं :—

हरि तुम बहुत अनुग्रह कीन्हों।

साधन-धाम विवुध दुरलभ तनु; मोहि कृपा करि दीन्हों॥

परमपरमात्मा की कृपा से ही मानुष जन्म मिल सकता है अन्यथा नहीं। कदाचित् स्वयं भगवान् भी मानुष तनु धारण करने की उत्कट इच्छा से इस मानव शरीर में आते हैं। विशेषतः तुलसी के राम तो मानवता के प्रतीक हैं। बालकपन से ही भगवान् राम मानवीय आचरण के आदर्श रहे हैं। तुलसी उनका बाल चरित लिखते हुये कहते हैं :—

गुर गृहँ गए पठन रघुराई। अलप काल विद्या सब आई॥
विद्या विनय निपुण गुण सीला। खेल ही खेल सकल नृपलीला॥

बालपन में ही विनीत, सदाचार पालक तथा विद्याव्यसनी राम का वर्णन अत्यन्त आकर्षक है।

इसके अतिरिक्त तुलसी ने राम के शिष्टाचार पालन का अनूठा वर्णन किया है । गुरु विशिष्ठ के आगमन पर कितनी विनम्रता, कितना आदर भाव तथा शिष्टता का व्यवहार राम द्वारा दिखाया गया है, जैसे—

आगमनु सुनत रघुनाथा । द्वार आइ पद नायउ माथा ।।
सादर अरघ देइ घर आने । सोरह भांति पूजि सनमाने ।।
गहे चरन सिय सहित बहोरी । बोले रामु कमलकर जोरी ।।

राम के भारत में शिष्य अपने गुरु का नाम बताकर अपना परिचय देता था । यह सबसे बड़ा प्रमाण था, क्योंकि विद्या पुस्तकों के माध्यम से नहीं बल्कि आचार्य के जीवन के माध्यम से प्राप्त होती थी । एक जीवन के पूर्ण संस्कार दूसरे जीवन में उतरते थे अर्थात् आचार्य अपना जीवन ही शिष्य को अर्पित करता था । विद्या जीवन में उतर आती थीं । शिष्य के आचरण में बोलती थी । क्या राम जैसे शिष्य और वशिष्ठ जैसे आचार्य भगवान् राम के भारत में आज भी हैं ? इसी को तुलसी ने मानवता के नाम से पुकारा है ।

तुलसी दास के रामचरित मानस में पिता के प्रति श्रद्धा दिखाते हुए भगवान् राम कहते हैं :—

निज कर खाल खैंची या तनु तें—जो पितु पग पात हीं करावौं ।
होऊँ न उरिन पिता दशरथ तें—कैसे ताके वचन मेटी पतियावौं ।।

इससे अधिक पितृ-भक्ति के सम्बन्ध में कोई क्या कह सकता है ।

हमारे नेता भारत में रामराज्य का स्वप्न पूरा करना चाहते हैं किन्तु यह स्मरण रहे कि सर्वगुण नियन्त्रित, आचरण-सापेक्ष, पक्षपात विहीन राज्य ही रामराज्य कहलाता है । रामराज्य का तुलसी ने विस्तृत वर्णन किया है जिसमें लिखा है :—दण्ड जतिन्कर भेद जहं नर्तक नृत्य समाज ।' अर्थात् चोर डाकूओं के अभाव में उन्हें दण्ड देने की कोई व्यवस्था ही नहीं थी । भगवान् राम के राज्य में कोई चोर या डाकू था ही नहीं तो दण्ड का प्रश्न ही नहीं उठ सकता था । प्राचीन शासक को डंके की चोट यह घोषित करने में कोई हिचकिचाहट न थी कि मेरे राज्य में न तो कोई चोर हैं न कोई कंजूस, न कोई मद्यपीने वाला, न ही कोई अनाहिताग्नि और न कोई यज्ञ क्रिया शून्य व्यक्ति विद्यमान है । कोई व्यभिचारी पुरुष भी नहीं है तो व्यभिचारिणी स्त्री कहां ?

कहना न होगा कि जिस व्यक्ति में मानवता का संचार हो गया भगवान् उसके सेवक बन जाते हैं । तुलसीदास ने राम की मानवता को अपने जीवन में ढाल लिया था । वही मानवता तुलसी ने अपने जीवन में उतार ली थी, उसके आचरण में बोलती थी इसी कारण भगवान् राम तुलसी के द्वार के प्रहरी बने थे । ऐसा विख्यात है किसी के पास गङ्गा के तट पर गोस्वामी तुलसीदास अपनी झोंपड़ी में सो रहे थे । रात्रि के घोर अन्धकार में जब समस्त संसार निद्रामग्न हो रहा था, दो चोर तुलसी की झोंपड़ी की ओर बढ़े । भला चोरों को उस विरक्त की झोंपड़ी से क्या मिल

सकता था परन्तु फिर भी तुलसी के किसी द्वेषी ने चोरों को भेजा था क्योंकि तुलसी के 'रामचरित्र मानस' की ख्याति दूर-दूर तक फैल रही थी। तुलसी के किसी ईर्ष्यालु व्यक्ति ने ऐसा काम किया था ताकि उसका लिखा हुआ 'रामचरित मानस' चुराया जाये। ज्योंहि चोर झोंपड़ी के पास पहुंचे तो ठिठक कर वहीं खड़े हो गये। देखते क्या हैं कि तुलसी की झोंपड़ी के द्वार पर दो तरुण राजकुमार कवच तरकस बांधे, हाथ में धनुष लिए हुए खड़े थे। चोरों ने झोंपड़ी के चारों ओर चक्र लगाया मगर बेसूद। जिधर भी चोर जाते उधर ही वे दोनों गौर-श्याम शरीर राजकुमार खड़े दिखाई देते चोरों का यह उद्देश्य था कि कहीं से भी झोंपड़ी में प्रविष्ट होकर रामचरित मानस चुरा लिया जावे। परन्तु वे प्रवेश न कर सके। तुलसी में मानवता का दिव्य-प्रकाश था जिससे जगन्नियन्ता राम को स्वयं लक्ष्मण सहित एक यथार्थ मानव की झोंपड़ी के द्वार पर पहरा देना पड़ा। इसीलिये तुलसी ने कहा :—

भय, निद्रा, मैथुन, अहार सबके समान जग जाये।
सुर-दुरलभ तनु धरि न भजे हरिमद अभिमान गंवाये॥

रामचरित मानस के उत्तर काण्ड में तुलसी ने मानव तथा दानव में अन्तर बताने के निमित्त चन्दन और कुल्हाड़ी का दृष्टान्त देकर इसी मानवता को समझाने का प्रयास किया है :—

काट परसु मलय सुनु भाई। निजगुन देइ सुगन्ध बसाई॥
ताते सुर सीसन्ह चढ़त जग वल्लभ श्री खंड।
अनलदाहि पीटत घर्नाहि परसु वदन यह दण्ड॥

मानव और दानव में यह अन्तर है कि जैसे कुल्हाड़ी और चन्दन का आचरण होता है। हे भाई! सुनो, कुल्हाड़ी चन्दन को काटती है क्योंकि कुल्हाड़ी का स्वभाव वृक्षों को काटना है। किन्तु चन्दन स्वभाव वश कुल्हाड़ी को सुवासित करता है। इसी गुण के कारण चन्दन देवताओं के सिरों पर चढ़ता है और जगत् प्रिय हो रहा है और कुल्हाड़ी को यह दण्ड मिलता है कि उसे आग में जला कर हथौड़े से पीटते हैं। इस प्रकार के मानव भगवान् को प्रिय हैं और भगवान् उनका आदर करते हैं। यहाँ तक कि वह जगदीश्वर स्वयं उनके द्वार के प्रहरी बनते हैं।

यही तुलसी प्रतिपादित मानवता है जो प्रेय से श्रेय की ओर ले जाने में समर्थ है। इसी में जन-जीवन का अतीत सोया हुआ है, वर्तमान करवटें ले रहा है और भविष्य के लिये अदृश्य बीज बोये जा सकते हैं अर्थात् यह मानवता जनजीवन के अतीत, वर्तमान और भविष्य तीनों का समाहार है। यह मानवता ही सर्वोत्तम तथा सर्व श्रेष्ठ है। इसकी जागृति से ही जन जीवन का कल्याण तथा उद्धार हो सकता है। इसके गौरव से प्रभावित होकर 'महाभारत' का कवि गा उठा था :—

'गुह्यं ब्रह्म तदिदं ब्रवीमि, नहि मानुषा छ्रेष्ठतरंहि किंचित्।'

राष्ट्र-पुरुष तुलसी दास

डा० विद्या नाथ गुप्त

भारतवर्ष चिरकाल से अपनी विशाल एवं विकासोन्मुख संस्कृति के लिए विख्यात रहा है। इसकी मुख्य विशेषता है—इसके मूल में स्थित धार्मिक भावना। पारलौकिक क्षेत्र में निस्संदेह यह विश्व भर में सर्वश्रेष्ठ रही है परन्तु व्यावहारिक पहलू में भी इसका स्थान श्लाघनीय रहा है। संस्कृति-विकास की यह धारा इस राष्ट्र के जीवन में किसी न किसी रूप में गतिशील रहती है। इसकी गति में जब कभी भी बाधा पड़ी कोई न कोई महापुरुष भारतवर्ष की पुनीत भूमि पर अवतरित हुआ जिसने अपने बुद्धि-बल एवं कला-कौशल से इसे पुनर्जीवन देकर इसे अक्षुण्ण बनाये रखा। तुलसीदास भी उन्हीं राष्ट्र-पुरुषों में से एक थे जिन्होंने तत्कालीन परिस्थितियों से उद्वेलित होकर सांस्कृतिक चेतना के पुनरुद्धार का दृढ़ संकल्प किया और धर्म के माध्यम से भारतीय जीवन में सर्वांगीण रूप से सुधार करके सच्चे अर्थों में राष्ट्र-पुरुष के कर्त्तव्य को निभाया। "वे भारत के उन इने-गिने रत्नों में हैं जिन्होंने भारत की संस्कृति पर प्रभाव डाल कर हमारे मानसिक, व्यावहारिक और सामाजिक भावना के स्वरूप को बहुत कुछ बदल दिया है। यही नहीं···आज भारतीय संस्कृति पर सबसे अधिक प्रभाव दिखाई देता है तो वह गोस्वामी तुलसीदास का है।"[1]

तुलसीदास चतुर्दिक अशान्ति एवं विशृंखलता का अनुभव करते थे। राष्ट्र की विपण्णावस्था ने उनके अन्तःपटल पर गहरा आघात किया और उन्होंने समूचे राष्ट्र को एक बार फिर से मर्यादित एवं स्वस्थ जीवन प्रदान करने के लिए मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम के उच्चादर्श की स्थापना की। उन्होंने एक कुशल नेता के समान प्रतिकूल परिस्थितियों में या राम-कथा का विस्तार कर भारतीय जनता का कल्याण किया। वह उत्कृष्ट अभिलाषा रखते थे कि क्या ही अच्छा हो कि अनेक महापुरुषों की जन्मदात्री भारत भूमि पर कोई राम उत्पन्न हो जाए, जो उस विक्षुब्ध वातावरण में अपनी धनुष की टंकार से पाप को विनष्ट कर पुण्य की विजय पताका लहरा कर दीन-हीन निराश जनता में आशा की किरण बनकर उसके क्लेशों का दमन कर सके।

तुलसीदास ने उस समय की सामाजिक दशा का विश्लेषण बड़ी सजीवता से किया है। सामन्तवादी शासनकाल में समाज की दुर्दशा तुलसी से छिपी नहीं थी। शासकीय जीवन विलासता पूर्ण था।

---

१. भगीरथ प्रसाद दीक्षित···तुलसीदास और उनके ग्रन्थ पृ० २।

प्रजा वर्णाश्रम धर्म-हीनता, मर्यादापरक आदर्शों के प्रति अवहेलना तथा धर्म-कर्म के प्रति उदासीनता आदि के कारण अत्यन्त शोचनीय दशा को प्राप्त कर चुकी थी। तुलसीदास इसका विवरण इन शब्दों में प्रस्तुत करते हैं :—

"बरन धर्म नहिं आश्रम चारी। श्रुति विरोध रत सब नर नारी।।
द्विज स्रुति बंचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम अनुशासन।।"[१]

विलासता के कारण सामाजिक जीवन में अनैतिकता का प्रसार हो रहा था। नर मर्कट के समान नारियों के हाथों कठपुतलियां बने हुए थे। अपने मानस में तुलसी ने इस विषय की ओर संकेत करते हुए लिखा है :—

"नारि बिबस नर सकल गोसाईं।
नाचहिं नर मरकट की नाईं।।"[२]

ऐसे दुश्चरित्र समाज में भिखारी उत्पन्न न होंगे तो और क्या होगा :—

"नहिं तोष विचार न सीतलता।
सब जाति कुजाति भये मंगता।।"[३]

उपरोक्त सभी प्रकार की कुरीतियों का निवारण करने के लिए तुलसी ने अपने महाकाव्य में आदर्श पुरुष, आदर्श परिवार, आदर्श समाज एवं आदर्श राम राज्य को जनता के सम्मुख रखकर उसके सामाजिक जीवन में अद्भुत चेतना उत्पन्न कर दी। 'आज जो हम झोंपड़ी में बैठे किसानों को भरत के 'भायत्र भाव' पर, लक्ष्मण के त्याग पर, राम की पितृ भक्ति पर पुलकित होते हुए पाते हैं, वह गोस्वामी जी के प्रसार से ही। धन्य है गार्हस्थ-जीवन में धर्मालोक-स्वरूप रामचरित और धन्य हैं उस आलोक को पहुंचाने वाले तुलसीदास। व्यावहारिक जीवन धर्म की ज्योति से एक बार फिर जगमगा उठा, उसमें नई शक्ति का संचार हुआ।"[४]

यद्यपि तुलसी वर्णाश्रम व्यवस्था के पक्षपाती थे परन्तु उसमें उनका संकुचित दृष्टिकोण उपलब्ध नहीं होता। वह तो केवल तत्कालीन परिस्थितियों में विश्रृंखलता में स्थिरता की स्थापना कर समाज को मर्यादित एवं व्यवस्थित करना चाहते थे। वह जानते थे कि सामाजिक उत्थान के बिना राष्ट्र की उन्नति नहीं हो सकती। इसीलिए वह विश्वास रखते थे कि जाति एवं राष्ट्र के हित के लिए प्रत्येक छोटे बड़े अमीर-गरीब को एक होकर चलना होगा। राष्ट्र का कल्याण सभी के एकीकरण में है। तुलसी के राम प्रेम के वश में थे। वह तो जाति-पाँति के भेद-भाव से दूर रहकर सभी से स्नेह करने वाले थे। राम स्वयं गुह को कहते हैं :—

---

१. रामचरित मानस, उत्तर काण्ड ९७–१
२. वही ९१–१
३. वही १०१–६
४. तुलसी ग्रन्थावली, तीसरा खण्ड पृ० ११३।

तुम्ह मम सखा भरत सम भ्राता।
सदा रहेउ पुर आवत जाता।।[१]

राम का अंकिचन शबरी के घर जाना, गीध को गोद में उठाना, वशिष्ठ का केवट को गले लगाना आदि कई प्रसंगों में तुलसीदास सामाजिक एकता की ओर संकेत करते हुए दिखाई देते हैं। इन सामाजिक संदेशों में राष्ट्र के हित-मंगल की भावना स्पष्ट झलकती है।

तुलसी से पूर्व धार्मिक दृष्टि से एक ओर विक्षोभ का स्वर सुनाई देता है तो दूसरी ओर सुधार का। भारतीय जनता बौद्धों, जैन-मतावलम्बियों, नाथ पंथियों तथा सिद्धों आदि की अनेक चमत्कार पूर्ण पद्धतियों के कारण धर्म के वास्तविक स्वरूप को भूल चुकी थी। यद्यपि कबीर, नानक तथा जायसी आदि अनेक सन्तों ने उदार नीति का अनुसरण किया, परन्तु भारतीय जनता की आत्मा इतने पर सन्तुष्ट नहीं थी। तुलसीदास ने एक बार फिर अपनी विलुप्त संस्कृति को जीवन देकर तथा उज्ज्वल धर्म के उज्ज्वल स्वरूप को जनता के सम्मुख रखकर उसे कृतकृत्य कर दिया। वह इस सम्बन्ध में अत्यन्त उदारता एवं सहिष्णुता की भावना रखते थे। उन्होंने सब प्रकार की चिन्तन-धाराओं का स्वर झंकृत कर लोक-मंगल की कामना की। उनकी समन्वयवादी भावना के विषय में निम्नलिखित विचार अवलोकनीय हैं :—

"भावों और व्यवहारों की अद्भुत एकता की वृद्धि करने में 'रामचरित मानस' ने अपने समय में महत्त्वपूर्ण भाग लिया है। धार्मिक द्वेष के मिटाने में तो इस लोकप्रिय महाकाव्य ने विलक्षण ही सफलता प्राप्त की है। जो शैव और वैष्णव एक दूसरे का सिर फोड़ते थे, उनमें एक दूसरे के प्रति बन्धुत्व जाग्रत करना इसी सुकृति का कार्य है। गोस्वामी जी की निष्काम भक्ति के प्रवाह ने लोगों के क्षुद्र भेदभावों और मनोविकारों को वहा दिया।"[२]

तुलसी धर्म के नाम पर निराश हो, किसी को भी निष्क्रिय नहीं देखना चाहते थे। उनकी दृष्टि में धर्म का अवतार तो वही है जो जाति तथा समाज पर संकट आने पर, आततायियों को नष्ट कर धर्म की रक्षा का भार अपने ऊपर लेता है, वही सच्चा धर्म-संस्थापक है जो सत्पुरुषों का ताप मिटाकर शान्ति की स्थापना करता है :—

जब-जब होई धरम कै हानि। बढ़हिं असुर अधम अभिमानी।।
तब-तब धरि प्रभु विवध शरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।।[३]

तुलसी के राम निश्चय ही धर्म के अवतार थे। उस धर्म के अवतार थे जिसकी स्थापना के के लिए अधर्मियों तथा कुकर्मियों का नाश करना होगा। उस धर्म के नहीं जो मनुष्य को पंगु बनाये वरन् उस धर्म के, जिसका आधार पाकर मनुष्य अधिक साहसी तथा कर्त्तव्य परायण हो सके। राम रावण के विषय में कहते हैं :—

---

१. मानस…उ० का० १०६, २।
२. मानस की रूसी भूमिका (हिन्दी अनुवाद) प्राक्कथन (क)।
३. मानस उ० का० १९—२।

जो सठ दंड करउं नहिं तोरा ।
भ्रष्ट होई स्रुति मारग मोरा ।।[1]

तुलसी का यह धार्मिक संदेश मध्यकालीन भारत की डगमगाती हुई जनता के लिए अत्यन्त प्रभावोत्पादक सिद्ध हुआ । रावण पर राम की विजय, पाप पर पुण्य की ही विजय है । तुलसी ने राम का व्यावहारिक रूप प्रस्तुत कर देशवासियों को पाप और अनाचार के विरुद्ध संघर्ष करते रहने का महान संदेश दिया । "भारत में व्यापक लोकप्रियता प्राप्त करते हुए तुलसीदास ने रामायण, मनोरंजन या पठन-पाठन-मात्र के लिए नहीं लिखा । उनके देशवासी विजेताओं द्वारा धूलि-धूसरित थे और उन्होंने अपने काव्य के द्वारा अपने देश की रक्षा के लिए अपूर्व मार्ग प्रदर्शन की चेष्टा की ।"[2]

तुलसीदास जी के संवेदनशील मस्तिष्क पर तत्कालीन आर्थिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था । शासक विलासिता में आकण्ठ मग्न थे । शासन-व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो रही थी । सम्पूर्ण "राजशाही लगभग स्वतन्त्र राज्यों, जागीरों और प्रान्तों का एक समूह था, जिनका शासन वंश-परम्परा, मुखिया, एक जमींदार या दिल्ली के प्रतिनिधि द्वारा होता था । कानून का नहीं व्यक्ति का राज्य था ।"[3] सच तो यह है कि क्या राजा, क्या प्रजा किसी का जीवन भी सुरक्षित नहीं था । तत्कालीन पापपूर्ण शासन, अन्याय एवं भ्रष्टाचार का वर्णन तुलसीदास जी ने रावण के राज्य के रूप में प्रस्तुत कर शासकों की घोर निन्दा की :—

भुजबल विश्व वश्य करि, राखेसि कोई न स्वतन्त्र ।
मंडलीक पति लंक पति, राज करइ निज मन्त्र ।।
देव यज्ञ गंधर्व नर, किन्नर नाथ कुमारि ।
जीति बरीं निज बाहु बल, बहु सुन्दर वर नारि ।।
वरनि न जाय अनीति, घोर निशाचर जो करहिं ।
हिंसा पर अति प्रीति, तिनके पापहिं कवनि मति ।।[4]

गोस्वामी जी ने ऐसे विकट समय में अपनी लेखनी के बल से भारतवासियों को सचेत किया और उन्हें एक आदर्श राजा एवं आदर्श राज्य का सुन्दर चित्र प्रस्तुत कर अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते रहने की अदम्य प्रेरणा प्रदान की । तुलसी ने हमें सुखी जीवन से प्रेम करना ही नहीं सिखाया, उसके लिए संघर्ष करना और कष्ट सहना भी सिखाया है । हम उनके इस वाक्य को याद करेंगे :—

देव दनुज भूपति भट नाना । सबल अधिक होऊ बलवाना ।
जो रन हमहिं पचारै कोऊ । लरहिं सुखेन काल किन होऊ ।।[5]

---

१. भगवानदास केला···रामचरित मानस और राष्ट्र निर्माण कल्याण १३–३ ।
२. मानस···बाल काण्ड १२०–३, ४ ।
३. मानस···उ० का० १०६, २
४. मानस की रूसी भूमिका (हिन्दी अनुवाद) प्राक्कथन (क) ।
५. आर० आर० सेठी···मुगलकालीन भारत का इतिहास पृ० २ ।
६. रामचरित मानस···बाल-काण्ड १८२, १८३ ।
७. डा० राम विलास शर्मा···स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य पृ० १०९ ।

तुलसीदास जी ने प्रजा की सुख शान्ति के लिए सुखद राम राज्य की कल्पना की। इसमें संशय नहीं कि तुलसी का राम राज्य एकतन्त्र शासन प्रणाली पर ही आधारित है परन्तु वह एकतन्त्र होते हुए भी निरंकुश नहीं है। मन्त्रिमण्डल के परामर्श तथा प्रजा की अनुमति का उसमें सदा सम्मान होता था। जिस एकतन्त्र शासन का वर्णन उन्होंने किया है उसका आदर्श आजकल के निरंकुश शासन से इतना ऊँचा है कि हम लोग, जो आजकल के निरंकुश शासन से ही परिचित हैं, अपने मन में उसकी सम्यक् कल्पना भी नहीं कर सकते। गोस्वामी जी द्वारा निरूपित आदर्श राज्य हवाई महल नहीं। यह वह शासन है जिसने कभी इस पवित्र भूमि को धन-धान्य, बल वैभव से पूर्ण किया था। यह वह शासन है, जिसकी सुखद छाया के लिए योरोप आकुल हो रहा है। यह वह शासन है, जिसके नियमानुसार एक तुच्छ व्यक्ति की सम्मति ने पति परायण, दुःखिनी साम्राज्ञी को सिंहासन से उतार कर जंगल में भिजवा दिया था। यह वह शासन है जिसमें प्रजा के दुःखों की पुकार नरेश के कर्णकुहर में पहुचने में देर नहीं लगती थी।[1]

तुलसी ने जिस राम राज्य की कल्पना की वह भगवान राम के साथ ही विनष्ट नहीं हुआ वरन् एक दीर्घकाल तक भारतवासियों को प्रेरणा प्रदान करता रहा है और करता रहेगा। तुलसी का राम-राज्य राष्ट्रपिता गाँधी के स्वप्नों का राज्य था। जिसे वह एक बार पुनः भारतवर्ष में साकार देखना चाहते थे। वह विश्वास करते थे कि राष्ट्र की आकांक्षाओं की पूर्ति तुलसीदास द्वारा वर्णित राम-राज्य में है। तुलसी के मंगलमय राम-राज्य की झलक देखिये :—

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम-राज्य नहिं काहुँहि व्यापा।।
नहीं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध-न लच्छण हीना।।
सब उदार सब पर उपकारी·········

आज भारतवर्ष की प्रजातन्त्र प्रणाली में यदि सच्चे अर्थों में राम-राज्य का आदर्श अंगीकार कर लिया जाये तो निश्चय ही सम्पूर्ण विश्व को सच्ची मानवता का पाठ पढ़ाने का श्रेय भारतवर्ष को ही होगा।

अन्त में इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि तुलसीदास एक क्रान्तिकारी कवि थे जिन्होंने अपने क्रान्तिकारी काव्य के माध्यम से क्रूर शासकों के हाथों मिटती हुई जनता को अपने महान संदेशों से बचा लिया। जीवन पर्यन्त राष्ट्र की हित कामना करने वाले तुलसीदास निस्संदेह राष्ट्र की अक्षय निधि है। उनकी मंगलमयी वाणी युगयुगान्तर तक राष्ट्र की उन्नति के लिए प्रेरणा प्रदान करती रहेगी।

१. पं० रामचन्द्र दुबे···श्री गोस्वामी और राजनीति (तुलसी ग्रन्थावली खण्ड ३) पृ० १३४।

गोस्वामी तुलसीदास और संस्कृत भाषा

श्री बालकृष्ण शास्त्री

एक महान् आलोचक ने मत प्रकट किया था कि गोस्वामी तुलसीदास ने वेदों का सम्यक् और विधिवत् अध्ययन नहीं किया था, उसके इस कथन का आधार कदाचित यह रहा हो कि तुलसी-साहित्य में संस्कृत के अन्य प्रसिद्ध और विशाल ग्रन्थों के समान वेदों या वैदिक वाङ्मय के सीधे सम्पर्क के प्रमाण उपलब्ध नहीं होते। कुछ भी हो, यह निर्विवाद सत्य है कि तुलसीदास के समय में यद्यपि भाषा (हिन्दी) साहित्य रचना के क्षेत्र में अपना ली गई थी, तो भी पठन-पाठन ग्रन्थ निर्माण और शास्त्रार्थ आदि के लिये विद्वन्मण्डली में अधिकांश मान्य और साधिकार भाषा के रूप में संस्कृत ही प्रचलित थी। गोस्वामी तुलसीदास ने विष्णु भगवान के जिस रामरूप को लेकर भक्ति का प्रचार किया, उनसे पहले के सभी गुरुओं, आचार्यों और रामभक्तों ने उस रामभक्ति से सम्बद्ध अपने प्रसिद्ध और महान् ग्रन्थों की रचना संस्कृत भाषा में ही की थी। इन गुरुओं में शठकोपाचार्य, रामानुजाचार्य और कुरेशस्वामी के नाम अग्रगण्य हैं। तुलसी काल में काशी संस्कृत का विद्यापीठ था, जहां अनेक धुरंधर विद्वान् संस्कृत की सेवा में इतने संलग्न थे, कि तुलसीकृत रामचरित मानस जैसे अमूल्य और अनुपम ग्रन्थ को भी इस आधार पर मान्यता देने के लिये तैयार नहीं थे कि यह ग्रन्थ भाषा (हिन्दी) में लिखा गया है। काशी में गोस्वामी तुलसीदास के साथ संस्कृतज्ञ और शास्त्रज्ञ विद्वानों का विरोध और वाद-विवाद इतना अधिक बढ़ गया कि अन्त में वहां के विद्वद्वर्गशिरोमणि महा-पण्डित मधुसूदन सरस्वती ने तुलसीदास के विषय में इन शब्दों से निर्णय दिया—

आनन्दकानने कश्चिज्जङ्गमस्तुलसी तरुः।
कवितामञ्जरी यस्य रामभ्रमर भूषिता॥

गो० तुलसीदास के समय शिक्षा का माध्यम प्रायः संस्कृत ही थी। गुरु और आचार्य लोग शिष्यों को संस्कृत में ही विधिवत् शिक्षा देते थे। काशी उन दिनों शिक्षा का केन्द्र माना जाता था। तुलसीदास ने भी ऐसे ही संस्कृत गुरु से शिक्षा पाई थी, क्योंकि नानापुराण निगमागमवेत्ता शिष्य (तुलसीदास) के गुरु का वेदवेदाङ्ग पारङ्गत शास्त्रवेत्ता और उच्चकोटि का राम भक्त होना अनिवार्य था। श्री रामचन्द्र शुक्ल ने बाबा नरहरिदास को उनका गुरु और काशीके पञ्चगङ्गाघाट-वासी विद्वान् महात्मा शेष सनातन को अध्यापक माना है, किन्तु इनके इस मत की पुष्टि अन्यत्र कहीं नहीं हुई। श्री शुक्ल जी ने बाबा नर-हरिदास के उनके गुरु होने की धारणा का आगे चलकर स्वयं

यह कहकर खण्डन कर दिया कि यह धारणा भ्रम मूलक है। पण्डित महात्मा शेष सनातन से अद्वितीय पाण्डित्य पाने की किम्वदन्ती की भी अन्तः साक्ष्य या वाह्य साक्ष्य से कहीं पुष्टि नहीं हुई। वास्तविकता यह है कि तुलसीदास ने अपने गुरु के विषय में स्वयं कहा है—

बन्दौ गुरुपदकञ्ज कृपासिन्धु नररूप हरि।
महामोहतम पुञ्ज जासुवचन रविकरनिकर॥

उनके गुरु बाबा नरहरिदास नहीं थे। बाबा नर-हरिदास के उनके गुरु होने की बात केवल इसलिये चल पड़ी कि श्री जार्ज ग्रियर्सन को पटना से जो वैष्णव सम्प्रदाय सूची प्राप्त हुई थी उसमें नर-हरिदास के अनन्तर तुलसीदास का नाम आता है। इस सूची के नर-हरिदास इतने विद्वान नहीं थे कि वे तुलसीदास को उच्चकोटि की शास्त्रीय और व्यावहारिक शिक्षा दे सकते। इसीलिये इसके साथ यह कल्पना भी की गई कि शेष सनातन से उन्होंने शास्त्रीय शिक्षा पाई थी। तुलसीदास ने अपने गुरु-मुख से ही कथा सुनी थी। उन्होंने लिखा है—

मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकर खेत।

सूकर खेत आचार्य रामनरेश त्रिपाठी के अनुसार वर्तमान 'सोरों' है जहां तुलसीदास के गुरु नरसिंह जी का मन्दिर अब भी विद्यमान है। उपर्युक्त सोरठे में 'नर रूप हरि' पद में तुलसीदास ने गुरु को साक्षात विष्णुरूप मानने के साथ-साथ मुद्रा अलंकार द्वारा उनका पवित्र नाम भी प्रकट किया है जो नृसिंह बनता है। इन्हीं गुरु से उन्होंने रामकथा संस्कृत में सुनी थी जिसका महत्व और पर्याप्त ज्ञान उन्हें अबोधावस्था के कारण पूर्णतया ज्ञात नहीं हुआ किन्तु आयु की वृद्धि के साथ साथ वे धीरे-धीरे इसके महत्व को समझने लगे—

तदपि कहीं गुरु बारहिंबारा। समुझि परी कुछ मति अनुसारा॥

इस प्रकार संस्कृत में सुनी गई और मत्यनुसार अवगत की गई रामकथा को उन्होंने जनता तक पहुंचाने के लिये जनभाषा में लिखने की प्रतिज्ञा की—

भाषाबद्ध करवि मैं सोई। मेरे मन प्रबोध जेहिं होई॥

तुलसीदास न केवल संस्कृत के ज्ञाता ही थे, अपितु वे संस्कृत में सुन्दर, सुललित और सरल कविता करने की पूर्ण क्षमता भी रखते थे। 'रामचरित मानस' का आरम्भ उन्होंने संस्कृत के श्लोकों से ही किया है—

नाना-पुराण निगमागम सम्मतं यद्,
रामायणे निगदितं क्वचिदेन्यतोऽपि।
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा,
भाषानिबन्धमति मञ्जुलमातनोति॥

रामचरित मानस के प्रत्येक काण्ड के मङ्गलाचरण में उन्होंने संस्कृत में दो तीन श्लोक अधिकांशतः शार्दूल विक्रीड़ित जैसे विकट छन्दों में लिखे हैं। अन्य श्लोक इन्द्रवज्रा, उपजाति और वसन्ततिलक जैसे वृत्तों में है। इससे उनकी संस्कृत काव्य रचना कुशलता पूर्ण-रूप से व्यक्त हो जाती है।

कुछ छिद्रान्वेषी आलोचकों ने तुलसीदास के संस्कृत भासाविषयक अधिकार पर यह दोष लगाया है कि तुलसीदास संस्कृत में केवल स्तुति परक श्लोक लिखने की ही क्षमता रखते थे। क्योंकि ऐसे श्लोकों में समास पूर्ण विशेषणों की भरमार होती है और कवि संस्कृत व्याकरण के धार्मिक तथा गूढ़ ज्ञान के बिना भी कविता कर सकता है। इसमें सन्देह नहीं कि तुलसीदास ने स्तुतिपरक श्लोक लिखे हैं और उनमें स्तुत्यदेव के समासयुक्त विशेषण भी समाविष्ट है किन्तु उन्हें संस्कृत व्याकरण का पूर्ण ज्ञान नहीं था, यह सत्य नहीं है, वरन् कहीं-कहीं तो यह सिद्ध होता है कि वे संस्कृत व्याकरण के भी पण्डित थे—

यन्मायावशवर्त्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादि देवासुर,
यत्सत्त्वादमृषेव भाति सकलं रज्जौयथाहेर्भ्रमः।
यत्पादप्लव-मेकमेव हि भवाम्भोधोल्तितीर्षावतां,
वन्देऽहं तमशेषकारण परं रामाख्यमीशं हरिम्॥

इस पद्य के तीसरे चरण के अन्तिम पद 'तितीर्षावताम्' को देखकर यह विश्वास न करना दुराग्रह ही होगा कि तुलसीदास को व्याकरण का ज्ञान था। जो कवि धातुओं के सन्नन्त प्रयोगों से मुक्त विशेषणों की रचना करके उन्हें श्लोकों के यति-गति और गणों के बन्धनों में जकड़ सकता है, उसे व्याकरण का ज्ञान नहीं होगा, यह कैसे माना जा सकता है।

संस्कृत व्याकरण का यथेष्ट ज्ञान न रखने का आरोप लगाने वाले आलोचकों का शायद तुलसीदास की संस्कृत में भारवि और माघ जैसे कवियों के द्वारा लिखे गये महाकाव्यों के समान क्रियाओं के कठिन प्रयोग नहीं मिलते न ही वर्णों की वह खिलवाड़ मिलती है जिसके दर्शन नीचे लिखे श्लोकों में होते हैं—

ननोनन्नुनो नुन्नो नोनाना नानाननानानु।
नुन्नोऽनुन्नो न नन्नेनोनाने नानुन्ननुन्नत॥

फिर भी क्रिया पदों के कुछ ऐसे रूप तुलसीदास के श्लोकों में मिलते हैं जो उनके व्याकरण के कठिन क्रियारूपों के ज्ञान को प्रकट करते हैं—

प्रसन्नतां या न गतामिषेकनस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः।
मुखाम्बुज श्री रघुनन्दनस्य में सदास्तु सा मञ्जुलमङ्गलप्रदा॥

इस श्लोक में म्लै धातु का लिट्लकार प्रथम पुरुषैकवचनान्तरूप 'मम्ले' असंदिग्धरूप से तुलसीदास के व्याकरण ज्ञान का धोतक है।

गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरित मानस के आरम्भ में ही 'नाना पुराणनिगमागम सम्मतम्' पद द्वारा संस्कृत ग्रन्थों के अपने विशाल ज्ञान का परिचय दे दिया था। उन्होंने संस्कृत के कितने छोटे, बड़े और विशाल ग्रन्थों का अध्ययन किया था इस बात का ठीक-ठीक अनुमान नहीं लगाया जा सकता। उनकी रचनाओं में कुछ ग्रन्थों के स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं, कुछ की छाया निश्चित रूप से दृष्टिगत होती है और कुछ एक के विषय में धुंधला परिचय मिलता है। तुलसी काव्य का सूक्ष्म अध्ययन करने वाले विद्वानों ने सिद्ध किया है कि संस्कृत के जिन महान ग्रन्थों का पूर्ण ज्ञान तुलसी दास को था, उनमें मुख्य बालमीकि रामायण, अध्यात्म रामायण, अगस्त्य रामायण, अग्निवेश रामायण, आनन्द रामायण, चम्पू रामायण, वसिष्ठ रामायण, ब्रह्म-रामायण, महा रामायण, अद्भुत रामायण, याज्ञवल्क्य रामायण, भागवतपुराण, देवी भागवत पुराण, पद्म पुराण, ब्रह्म वैवर्त्त पुराण, विष्णु पुराण, शिव पुराण, अग्नि पुराण, रघुवंश, कुमार सम्भव, भट्टिकाव्य, उत्तर रामचरित, प्रसन्नराघव हनुमन्नाटक, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, गर्गसंहिता, गालव संहिता, पाराशरसंहिता, शुक्रनीति, चाणक्य नीति, पञ्चतन्त्र, हितोपदेश, भोजप्रबन्ध, भर्तृहरिशतक और कई सुभाषित ग्रन्थ हैं। ऐसे प्रतीत होता है कि तुलसीदास का मस्तिष्क एक चलता फिरता और जीता जागता संस्कृत का विशाल पुस्तकालय था, जिसके ग्रन्थों के पाठ तुलसीदास के सङ्केतमात्र पर हाथ जोड़कर सेवा के लिये तत्पर हो जाते थे। तुलसीदास की रामचरित मानस आदि सभी रचनाओं में ऊपर लिखे ग्रन्थों के पाठों के हिन्दी अनुवाद मिलते हैं। कुछ रोचक स्थल विज्ञजनों के विनोदार्थ नीचे दिये जाते हैं—

राम चरित मानस--

मुनि समूह महँ बैठे सन्मुख सबकी ओर।
सरद इन्दु तन चितवन मानहुं चन्द्र चकोर॥

बाल्मीकि रामायण--

स्थित्वा मुनि समूहेसु जानकी राम लक्ष्मणः।
तान् सर्वांश्च निरीक्षन्ते चकोराः शरदेन्दुवत्॥

मानस—वरु मलवास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देइ विधाता।
गरड़ पुराण—वरं हि नरके वासो न तु दुश्चरिते गृहे।
दोहावली—शूर समर करनी करहिं कहि न जनावहि आप।
श्री मद्भागवत—न वै शूरा विकत्थन्ते दर्शयन्त्येव पौरुषम्।
विनय पत्रिका—अब नाथहिं अनुरागु जागु जड़ त्यागु दुरासा जीते।
बुझै न काम अगिनि तुलसी कहुँ विषयभोग बहुघीते॥

मनुस्मृति—न जातु कामः कामानामुपभोजेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्त्तते ॥

मानस—जब-जब होइ धर्म कै हानी । बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ।
तब-तब हरिधरि विविधसरीरा । हरहिं कृपा निधि सज्जन पीरा ॥

भगवद् गीता—यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

राम चरित मानस-दोहा—जो सम्पत्ति सिव रावनहि, दीन्ह दिये दसमाथ ।
सो संपदा विभीषनहि सकुचि दीन्ह रघुनाथ ॥

हनुमन्नाटक—या विभूतिर्दशग्रीवे शिरश्छेदेऽपि शङ्करात् ।
दर्शनाद्राम देवस्य सा विभूति विभीषने ॥

कवितावली—रावरे दोषु न पायन को, पगु धूरि को भूरि प्रभाउ महा है ।
पाहन ते जल वाहनु काठ को, कोमल है जलु खाइ रहा है ॥
पावन पाय पखारि कै नाव, चढाइहौं आयसु होत कहा है ।
तुलसी सुनि केवट के बरबैन, हंसे प्रभु जान की ओर हहा है ॥

अध्यातम रामायण—क्षालयामि तव पादपङ्कजम्,
नाथ दारुदृषदोः किमन्तरम् ।
मानुषीकरण रेणु रस्ति ते,
पादयोरिति कथा प्रथी यसी ॥

मानस—विनय न मान खगेश सुनु, डाँटहि पै नवनीच ।

कुमार सम्भव—शाम्येत्प्रत्यपकारेण नोपकारेण दुर्जनः ।

विनय पत्रिका—कब हुंक हौं यहि रहनि रहौंगी ।
श्री रघुवीर कृपालु कृपाते सन्त सुभाव गहौंगो ॥
यथा लाभ सन्तोष सदा, काहु सों कुछ न चहौंगो ।
परहित निरत निरन्तर मन क्रम वचन नेन तिव हौंगो ॥
परुष वचन अतिदुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो ।
विगतमान समशीतलमन परगुन, नहिं दोष गहौंगो ॥
परिहरि देह जनित चिन्ता, दुख-सुख समबुद्धि सहौंगो ।
तुलसीदास प्रभु यहि पथरहि, अविचल हरिभक्ति लहौंगो ॥

महा रामायण—शान्तः समान मनसश्च सुशील युक्त,
स्तोषक्षमा गुण दया मृजु बुद्धि युक्तः ।

विज्ञान-ज्ञान विरतिः परमार्थवेत्ता,
निर्धामकोऽभयमनः स च रामभक्तः ।।

यद्यपि तुलसीदास ने जनभाषा में रामकथा की चर्चा करने की प्रतिज्ञा की तो भी अपने समय में प्रचलित संस्कृत की रचना शैली के मोह का वे त्याग नहीं कर सके। अवधी और ब्रजभाषा में लिखे गए उनके अनेक पद्यों में न केवल उस शैली के दर्शन ही होते हैं अपितु कुछ एक पद्यों का तो संस्कृत के पद्य होने का सन्देह होता है। राम-चरित-मानस के बालकाण्ड में ब्रह्मा देवाधिदेव विष्णु की स्तुति इन शब्दों में कर रहे हैं—

जय-जय सुरनायक जय सुख दायक प्रनतपाल भगवन्ता ।
गो-द्विज हितकारी जय असुरारी सिन्धु सुता प्रियकन्ता ।।
भव वारिधि मन्दिर सब विधि सुन्दर गुनमन्दिर सुख पुंजा ।
मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पदकंजा ।।

इस छन्द में भाषा (हिन्दी) के परिचायक केवल विसर्गों के स्थान पर आकार या ह्रस्व के स्थान पर दीर्घ स्वर का प्रयोग ही है, अन्यथा हिन्दी और संस्कृत की शब्दावली में कोई अन्तर दृष्टिगत नहीं होता।

विनय पत्रिका के एक राग में राम की स्तुति करते हुए तुलसीदास जी लिखते हैं—

श्री रामचन्द्र कृपालु भजुमन, हरन भवभय दारुणं ।
नव कंज-लोचन कंज-मुख, करकंज पदकंजारुनं ।।
... ...

इति वदति तुलसीदास संकर-सेष-मुनि-मन रजंनं ।
मनहृदय कंज निवास करु कामादि खलदल गंजनं ।।

इस पद्य में संस्कृत और हिन्दी का भेद केवल एक संस्कृतज्ञ पण्डित ही जान पाता है।

कवितावली के निम्नलिखित में पद्य में मन्दोदरी अपने पति दशग्रीव को श्री राम के बल का भय दिखाती हुई सम्मति दे रही है—

कटक गिरि सृंग चढ़ि देखि मर्कट कटकु,
वदत मन्दोदरी परमभीता ।
सहस भुजमत्त गजराज रन केसरी,
परसुधर गर्वु जेहि देखि बीता ।।
दास तुलसी समरसूर कोसल धनी,
ख्याल ही बालि बल सालि जीता ।
रे कन्त तृनदन्त गहि सरन श्री रामु कहि,
अजहुँ एहि भान्ति लै सौंपु 'सीता' ।।

इस सवैये की संस्कृतमयता तो स्पष्ट ही है।

यह भी एक निर्विवाद सत्य है कि गोस्वामी तुलसीदास ने हिन्दी भाषा को एक विशेष साहित्यिकता प्रदान की थी। उनसे पूर्व के सन्तकाव्य और सूफी काव्य में सधुक्कड़ी और अवधी में लौकिकता (लोक भासात्वता) अधिक थी। तुलसीदास ने राम-चरित-मानस, कवितावली और विनय पत्रिका आदि ग्रन्थों की भाषा अवधी और ब्रज का संस्कार किया, इन्हें लालित्य प्रदान किया और इनको सरसता की चरम सीमा पर पहुँचा दिया, लोकभाषा तभी साहित्यिक भाषा का पद ग्रहण करती है जब उसकी शब्दावली अपने मौलिक रूप की ओर मुड़कर जनसाधारण की बोली से अलग हो जाती है। हिन्दी भाषा के साहित्यिकत्व में संस्कृततत्व का योगदान महत्वपूर्ण है। यदि गोस्वामी तुलसीदास संस्कृत का पूर्ण और विशाल ज्ञान न रखते होते तो वे ब्रज और अवधी को साहित्यिक रूप प्रदान करने में कैसे सफल हो सकते थे।

विनय पत्रिका तुलसीदास जी एक अनमोल काव्य रत्न है। इसमें उनकी कवि प्रतिभा और कवित्वशक्ति का पूर्ण विकास हुआ है। यह उनका अन्तिम ग्रन्थ है। इसमें भक्तिरस का पूर्ण परिपाक हुआ है। इसकी साहित्यिकता में संस्कृत के योगदान पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

कुलिस कुन्द कुडमल दामिनि दुति वसनन देखि लजाई।
नासानैन कपोल ललित स्रुति कुन्डल भ्रू मोहिभाई॥
कुंचित कच सिर मुकुट भालपर तिलक कहुँ समुझाई।
अलप तडित जुगरेख इन्दु महँ रहि तजि चंचलताई॥

इस पद्य में कुन्द, कुडमल, दामिनी, वसन, नयन, कपोल, ललित कुण्डल, भ्रू नासा, कुंचित कच, मुकुट, भाल, तिलक, तडित और इन्दु शुद्ध, संस्कृत शब्द हैं। कुलिस (कुलिश), दुति (द्युति), स्रुति (श्रुति), सिर (शिरस्), अलप (अल्प), जुग (युग) और रेख (रेखा) तद्भव शब्द हैं। शेष शब्द हिन्दी की क्रियाएं हैं, इसी से स्पष्ट हो जाता है। कि उपर्युक्त पद्य की साहित्यिकता में संस्कृत का योगदान कितना है।

रामनाम की महिमा का गान करने वाले एक और पद की साहित्यिकता देखिए—

रामनाम महिमा करैं कामभूरुह आको।
साखी वेद पुरान हैं तुलसी तन ताको॥

(विनय पत्रिका)

इस दोहे में राम, नाम, महिमा, काम, भूरुह, वेद, पुराण शब्द शुद्ध संस्कृत के शब्द हैं।

कवितावली में अवधेश महाराजा दशरथ के चारों बालकों के बाल सौन्दर्य का वर्णन करते हुए तुलसीदास जी की साहित्यिकभाषा की छटा देखिये—

तन की द्युति स्याम सरोरुह लोचन कंज की मंजुलताई हरैं।
अति सुन्दर सोहत धूरिभरे छवि भूरि अनंग की दूरि धरैं॥
दमकैं दतियाँ दुति दामिनी ज्यौं किलकैं कलबालविनोद करैं।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी मन-मन्दिर में बिहरैं॥

गोस्वामी तुलसीदास ने मलिक मुहम्मद जायसी की ग्रामीण (लौकिक) अवधी भाषा को राम-चरित-मानस में साहित्यिक रूप प्रदान करके अपनी प्रतिभा, कवित्व शक्ति और भाषा पाण्डित्य से अकाट्य प्रमाण प्रस्तुत किये हैं। श्री राम-लक्ष्मण और सीता के साथ वन मार्ग पर चल रहे हैं, मार्ग में ग्रामवासी उन्हें देख-देखकर विस्मित हो रहे हैं। तभी सामने से एक तपस्वी आता है और अपने इष्ट देव को पहचानकर और भक्ति से विह्वल होकर श्री राम के आगे पृथ्वी पर दण्ड समान गिर पड़ता है।

तिहि अवसर इक तापस आवा। तेज पुन्ज लघु वयस सुहावा।
कवि अलसित गति वेष विरागी। मन-क्रम वचन राम अनुरागी॥

दोहा—सजल नयन तन पुलकि, निज, इष्ट देउ पहिचानि।
परेउ दंड, जिमि धरनितल, दसा न जाइ बखानि॥

इस काव्यांश में अवसर, तापस, तेज (:) पुन्ज, लघु, वयस्, कवि, गति, वेष, विरागी, मन (स्) वचन, राम, अनुरागी, सजल, नयन, व्रिज, इष्ट और धरणीतल शब्द संस्कृत के हैं।

एक अन्य स्थल पर जगदम्बा सीता के मुख की शोभा के वर्णन में तुलसीदास कह रहे हैं—

बहुरि बिचार कीन्ह मनमाहीं। सीय वरन समहिन कर नाहीं।

दोहा—जनम सिन्धु पुनि बन्धु विपु, दिन मलि न सकलंकु।
सियमुख समता पाव किमि, चन्द वापुरो रंकु॥

राम-चरित-मानस के इस अंश में विचार, मन, वदन, सम, हिमकर सिन्धु, दिन, मलिन, मुख और समता संस्कृत के शब्द हैं। जनम, पुनि, विपु सकलङ्क और रङ्क संस्कृत के जन्म, पुनः विष, सकलङ्क और रङ्क शब्दों के तद्भव हैं। इन्हीं शब्दों का प्रतिभापूर्ण विन्यास महाकवि तुलसीदास को साहित्यिक बना रहा है।

इन उद्धरणों के सूक्ष्म अध्ययन से सिद्ध होता है कि तुलसीदास जी कि भाषा को साहित्यिक बनाने के पुनीत कार्य में सर्वाधिक योगदान गीर्वाणवाणी ने दिया है।

स्वान्तः सुखाय काव्य के रचयिता, भक्ति रस में शील, शक्ति और सौन्दर्य के सम्पादक, निगमागमधर्मोन्नायक, सरस उपदेष्टा, कलिपन्नग ग्रस्त जनता के पथ-प्रदर्शक, उद्धारक और मानव-जीवन की मर्यादाओं के संस्थापक महाकवि गोस्वामी तुलसीदास का भारतीय जनता पर अतुलनीय उपकार तो है ही, उन्होंने संस्कृत और राजस्थानी, व्रज तथा अवधी जैसी उसकी दुहिताओं को जिस प्रकार साहित्य सम्पत्ति से समृद्ध किया वह सर्वथा अनुपमेय है। तुलसी की अनन्त देन शाश्वत एवं कालजयी है; इसमें दो मत नहीं।

तुलसी और नारी

डॉ० जनक गुप्ता

राम कवियों में तुलसी की नारी-भावना विवाद एवं मतभेद का विषय रही है। कतिपय विद्वानों के अनुसार तुलसी ने नारी-जाति को आदर और श्रद्धा की पात्री माना है। श्री राम नरेश त्रिपाठी ने तुलसी को नारी-निन्दा के दोषारोपण से बचाने के लिए निम्नांकित युक्तियां दी हैं:—[1]

(१) प्रसंग देखना चाहिये कि कौन सी बात किस अवसर पर कही गई है और वह कहाँ स्वाभाविक है।

(२) संस्कृत, हिन्दी तथा अन्य भाषाओं के कवियों ने भी स्त्री-जाति की निन्दा की है फिर तुलसी के बहुत से कथन अनुवाद मात्र हैं, उनके दिमाग की उपज नहीं।

(३) जहां नारी निन्दा की है वहां समझना चाहिये कि संत-मतावलम्बियों के लिये है, गृहस्थों के लिये नहीं।

(४) समयानुसार लोगों को सन्मार्ग पर ले जाने के लिये यह उचित था। उन्होंने लोगों को उस आग से बचा लिया जो सद्‌गुणों को जला डालती।

आचार्य शुक्ल ने भी तुलसी के नारी-निन्दा के प्रसंगों को अर्थवाद के अन्तर्गत लाकर उनके ऊपर आरोपित नारी-निन्दा के दोष के परिहार का प्रयास किया है। शुक्ल जी का मत है कि युग-व्यापक विराग और तप की भावना के कारण तुलसी ने नारी के उस रूप का विरोध किया है जो तप और निवृति में बाधक है। कुछ साहित्यकारों का यह अनुमान है कि गोस्वामी जी की नारी-निन्दा का कारण उनका नारी-सम्पर्क का अभाव है। ममतामयी जननी का मृदु वात्सल्य उनके लिये एक कल्पना मात्र थी। अपनी स्त्री द्वारा फटकार प्राप्त कर वे वैरागी बने अतः नारी के प्रति उनकी विराग—भावना समकालीन नारी की शोचनीय दशा एवं साहित्य की परम्परा से प्रेरणा प्राप्त कर पनप उठी।

वस्तुतः तुलसी के यह सौभाग्य और दुर्भाग्य दोनों ही रहे हैं कि भारतीय परम्परा ने उन्हें लोक नायक महात्मा पहले और कवि बाद में माना है।

तुलसी के प्रकांड आलोचक शुक्ला जी ने भी उनके इस रूप पर ही अधिक बल दिया है।

---

१. तुलसी और उनका काव्य पृष्ठ २६४-२७१।

परिणामत: आधुनिक नारी की उद्बुध चेतना में एक प्रश्न उत्पन्न हुआ कि यदि तुलसीदास लोक नायक महात्मा थे तो उनका नारी-जाति के प्रति यह उपेक्षा भाव क्यों ? तुलसी दास तो 'सिया राम मय सब जग जानी' के सिद्धान्त को मानते थे—फिर उनमें यह भेद भाव क्यों ? तुलसी दास के 'राम चरित मानस' तथा अन्य ग्रन्थों में विभिन्न प्रसंगों में ऐसी अनेक उक्तियाँ हैं जो उनकी नारी विषयक अनुदारता एवं उपेक्षा की सूचक हैं। माता प्रसाद गुप्ता ने इस विषय में ठीक ही कहा है :

'प्रत्येक युग के कलाकार नारी-चित्रण में प्राय: उदार पाए जाते हैं किन्तु नारी-चित्रण में तुलसी दास बेहद अनुदार है। यद्यपि उनकी अनुदारता का कारण अब तक रहस्य के गर्भ में छिपा हुआ है, परन्तु नारी-विषयक उनकी अनुदारता एक ऐसा तथ्य है जिसको अस्वीकृत नहीं किया जा सकता।[1]

डा० नगेन्द्र के विचार भी इस विषय में अपना विशेष महत्व रखते हैं। उनके मतानुसार भी 'तुलसी दास के 'राम चरित मानस' तथा अन्य ग्रन्थों में, विभिन्न प्रसंगों में ऐसी अनेक उक्तियां हैं जो किसी भी देश-काल की नारी के प्रति किसी एक में भी न्याय नहीं करती। उन्होंने नारी की प्रकृति, उसके चारित्रय-बुद्धि-विवेक, आचार-व्यवहार सभी की निन्दा की है।[2]

तुलसी दास जी ने अपने नारी-सम्बन्धी विचार स्वयं अपनी और पात्रों की प्रसंगानुसार उक्तियों दोनों प्रकार से व्यक्त किये हैं। तुलसी ने दो प्रकार के नारी-चरित्रों की सृष्टि की है—

(१) आदर्श नारी-पात्र।

(२) और निम्न नारी-पात्र।

निम्न-कोटि के नारी-चरित्रों के विषय में जो उक्तियां है, उन्हें लेकर कवि के विचारों को नहीं मानना चाहिये, इसके अतिरिक्त जो निम्न कोटि के पुरुष पात्र हैं उनके कथनों को भी प्रमुखता नहीं देनी चाहिये। अत: सर्वप्रथम हम मानस, के उन्हीं उदाहरणों पर विचार करेंगे जो उन्होंने आदर्श नारी के लिए कहे हैं और उनके कहने वाले या तो सत्पात्र हैं या स्वयं कवि हैं।

सती-भ्रम के प्रसंग को लेकर शंकर जी नारी-जाति की प्रकृति को स्पष्ट करते हैं :—

सुनहु सती तव नारि सुभाऊ।
संसय अस न धरिय उर काऊ॥

नारी-प्रकृति की हीनता इस कथन से स्पष्ट व्यंजित होती है। इस कथन के लिये यह कहा जा सकता है कि कवि को इस प्रकार के प्रसंग में सती के लिये ऐसा कहलाना आवश्यक था, कारण यदि सती का ऐसा स्वभाव न होता तो उनको संशय भी न होता और राम की महत्ता प्रदर्शन के लिए अवकाश भी न मिलता। यदि यह कथन केवल सती के लिए होता, नारी जाति के लिए नहीं,

---

१. माता प्रसाद गुप्ता—तुलसी दास—पृ० ३०७
२. डा० नगेन्द्र—तुलसी और नारी—पृ० ३४०

तो इस तर्क की उपयुक्तता में किसी प्रकार का सन्देह ही न होता परन्तु 'तव नारि सुभाउ' केवल एक नारी की नहीं सारी नारी-जाति की व्यंजना करता है। इसके पश्चात् कवि की अपनी टिप्पणी है उसे भी देखिये :—

सती कीन्ह चह तहहुँ दुराऊ।
देखहुँ नारि सुभाव-प्रभाऊ॥

सती में जो हीनता की भावना विद्यमान है उसे हम सारी नारी-जाति की हीनता कह सकते हैं। सती के ये शब्द नारी-जाती की जड़ता और अज्ञानता का खुला विज्ञापन करते हैं :—

सती हृदय अनुमान किये सब जानेऊ सर्वज्ञ।
कीन्ह कपट मैं संभु सन, नारि सहज जड़ अज्ञ॥

अनुसूया जी आदर्श महिला हैं, वे सीता को उपदेश देते हुए नारी को 'सहज अपावन' कहती हैं। भरत 'राम चरित मानस' के सर्वश्रेष्ठ पात्र हैं नारी की प्रकृति के विषय में उनकी भी धारणा देखिये :—

विधि हु न नारी हृदय-गति जानी।
सकल कपट अघ अवगुण खानी॥

तुलसी के राम साक्षात ईश्वर और 'राम चरित मानस' के नायक हैं, वे नारी के विषय में लक्ष्मण से क्या कहते हैं—इसे भी देखिये :—

राखिय नारि जदपि उर माही।
जुवति सांस्त्र नृपति बस नाही॥

राम ने नारी को मोक्ष के लिए बाधक तथा दुःखों की खान बताया है। भक्ति से विमुख करने वाली सेना में स्त्री सबसे अधिक कष्ट दायक है :—

काम क्रोध लोभादिमद प्रबल मोह के धारि।
तिन्ह महं अति दारुन दुखद माया रुपी नारि॥

तुलसी दास जी का सबसे भयंकर प्रहार नारी के कामिनी रूप पर हुआ है उन्होंने रामादि आदर्श पात्रों द्वारा परोक्ष रूप से और उधर स्वयं प्रत्यक्ष रूप से अनेक स्थानों पर नारी के इस भयंकर खतरे की चेतावनी दी है। बलदेव प्रसाद मिश्र ने ठीक ही कहा है :—

'विषयों में सब से प्रबल है कामोपभोग और पुरुषों के लिए इसका प्रधान साधन है प्रमाद अथवा नारी। इसलिये विषय वासना की निन्दा को अपना प्रधान लक्ष्य बनाने वाले गोस्वामी जी ने नारी-निन्दा में कोई कसर नहीं रख छोड़ी है।'[1]

नारी के कामिनी-रूप को खतरे का सूचक बताने वाले कतिपय उदाहरण देखिये :—

---

[1] तुलसी-दर्शन—बलदेव प्रसाद मिश्र पृ० ८०।

दीपसिखा सम जुवति तन मन जनि होसि पंतग ।
भजहि राम तजि काम मद करहि सदा सतसंग ।।

नारि सुभाऊ सत्य कवि कहंहि, अवगुण आठ सदा उर रह ही ।
साहस अनृत चपलता माया, मय अबिवेक असौच अराया ।।
भ्राता पिता पुत्र उर गारी, पुरुष मनोहर निरखत नारी ।
होई विकल सक मनहि न रोकी जन्म, जिमि रबिमनि द्रव रबिहि विलोकी ।।

जल-पत्रिका बरति के देखहु मनहि बिचारि ।
दारुण बैरी मीचु के बीच बिराजत नारी ।।

पंपासर के किनारे नारद मुनि को सावधान करते हुए भगवान् राम कहते हैं :—

सुनि मुनि कह पुरान स्रुति सन्ता ।
मोह-विपिन कह नारि बसन्ता ।।
जप तप नेम जलासय भारी ।
होइ ग्रीष्म सोखइ सब नारी ।।
पाप उलूक-निकर सुखकारी ।
नारि निबिड़ रजनी अँधियारी ।।
बुद्धि बल सील सत्य सब मीना ।
बन्सी सम जिय कहंहि प्रबीना ।।

नारी मोह-रूपी विपिन के लिए बसन्त के समान है, जप-तप नियमादि जलाशयों की वह ग्रीष्म ऋतु के समान सुखा देती है । पाप रूपी उलूकों के लिए वह निबिड़ रात्रि के समान सुख देने वाली है और बुद्धि, बल, शील तथा सत्य रूपी मीनों के लिए वंशी के समान है ।

नारी विषयक यह धारणा केवल पुरुषों की ही नहीं है नारी स्वयं भी अपने विषय में यही सोचती है :—

अधम तें अधम अधम अति नारी ।
तिन्ह महं मैं मति-मन्द गँवारी ।।

अपनी सहज अज्ञता तथा मूर्खता के कारण वह तत्व दर्शन आदि की अधिकारिणी नहीं है । 'जदपि जोषिता नहीं अधिकारी" नारी के आचार-व्यवहार को भी तुलसीदास जी ने घृणा की दृष्टि से देखा है:—

कह हम लोक-बेद-विधि-हीनी ।
लघुतिय कुल करतूति मलीनी ।।

अन्य बहुत से कथन नारी-जाति की निन्दा में कहे गये है किन्तु उन्हे कुपात्र द्वारा कहा या परिस्थितियों-वंश जान हमने छोड़ दिया है । वस्तुतः संस्कृत, हिन्दी तथा अन्य भाषाओं के जिन

कवियों ने नारी-निन्दा की है वे भी इस दृष्टि से ग्रलोच्य हैं ग्रौर न ही तुलसी बाबा इस ग्रालोचना से बरी किये जा सकते हैं। जो कथन ग्रनुवाद मात्र हैं, उनके लिये भी तुलसी ही दोषी हैं क्योंकि उन्हें तुलसी ने ग्रपना बनाकर ग्रहण किया है तुलसी दास के भक्तों तथा प्रशंसकों ने उनकी ग्रोर से बहुत से तर्क प्रस्तुत किये हैं जिनका वर्णन हम पहले ही कर चुके है, उन सब तर्कों को हम यथा सम्भव लेते हैं। सर्व प्रथम यह कहना है कि तुलसीदास जी ने नारी-निन्दा सन्त-मतावलम्बियों के लिये की है गृहस्थों के लिये नहीं। परन्तु देखने में हमें इसके विपरीत मिलता है। 'रामचरित मानस' का प्रचार सबसे ग्रधिक गृहस्थों के यहां ही ग्रधिक है फिर हम यह कैसे मान लें कि तुलसी ने 'मानस' सन्त-मतावलम्बियों के लिये लिखा है ? 'मानस' में पूर्णतया गार्हस्थ जीवन की व्याख्या है जिसके कारण ही तुलसी लोक-नायक कवि कहलाते हैं। यदि यह मान भी लें कि 'मानस' सन्त-मतावलम्बियों के लिये लिखा गया है तो उसका यह ग्राशय नहीं कि नारी-जाति की निन्दा की जाये। इस सम्बन्ध में नारी-जाति की निन्दा की ग्रपेक्षा सन्तों को ही संयम का उपदेश दिया जाना चाहिये था।

ग्रौर फिर यह कहना कि लोगों को सन्मार्ग पर लाने के लिये नारी-निन्दा की गई हैं— कितना विचित्र है। इस सम्बन्ध में क्या केवल स्त्रियां ही दोषी हैं ? वास्तव में दोनों दोषी हो सकते हैं। इसलिये नारी तथा पुरुष दोनों को समान फटकार मिलनी चाहिये थी क्योंकि पुरुष के साधना मार्ग में नारी बाधा है तो नारी के साधना-मार्ग में पुरुष भी बाधा हो सकता है। केवल नारी के प्रति इस प्रकार का भाव दिखला कर तुलसी बाबा ने न्याय नहीं किया। "दीप-सिखा सम जुवति-तन मन जनि होई पतंग" पर ग्राचार्य शुक्ल जी ने कहा है कि यदि[१] "पुरुष-पतंगों के लिये गोस्वामी जी ने स्त्रियों को जिस प्रकार दीपशिखा कहा है, उसी प्रकार स्त्री-पतंगियों के लिये वह पुरुषों को भाड़ कहेगी।"

. एक लोक नायक कवि के बचाव के लिये यह एक ग्रच्छी युक्ति है परन्तु यह तो ऐसा ही है जैसे किसी को मुक्का लगने पर उसे यह कह कर बहला दिया जाये कि "ग्रच्छा बाबा ग्रब तुम भी एक मुक्का मारो।" एक तर्क तुलसीदास जी के पक्ष में यह भी दिया जाता है कि उन्होंने सभी स्त्रियों की निन्दा नहीं की जिनको निन्द्य समझा है उन्हीं की निन्दा की है। सीता कौशल्या, सुमित्रा, यहाँ तक कि मन्दोदरी के प्रति भी उन्होंने ग्रसीम श्रद्धा प्रकट की है। परन्तु इसके उत्तर में हम यह कह सकते हैं कि सीता, कौशल्या ग्रादि की महिमा का वर्णन तुलसी ने केवल राम तुलसी ने केवल राम के नाते से किया है ग्रौर उन्होंने एक स्थान पर इस बात की पुष्टि भी की है:—

नाते सबहि राम के मनियत।
श्रव्य सुसेव्य जहाँ लौं॥

---

१. गोस्वामी तुलसीदास—रामचन्द्र शुक्ल पृ० ४४

इन पात्रों की महिमा वास्तव में राम की ही महिमा है। मन्दोदरी की महिमा भी इसी कारण है क्योंकि वह राम की भक्त है, राम के कारण वह कई बार अपने पति से झगड़ा मोल ले लेती है। राम यदि बीच में न होते तो न मालूम तुलसी बाबा मन्दोदरी के विषय में भी क्या कहते ? और फिर यदि हम मान भी लें कि तुलसी दास जी ने सीता, कौशल्या आदि नारियों की महिमा का गान किया है, तो फिर भी यह विशेष व्यक्तियों की ही महिमा का गान हुआ नारी-जाति की तो उन्होंने निन्दा ही की है। व्यक्ति को अच्छा-बुरा कहना कोई विशेष महत्व नहीं रखता किन्तु समूची जाति को बुरा कहना तो कवि की सामान्य धारणा को ही व्यक्त करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि तुलसीदास जी के जीवन में घटी एक घटना (जिसने उनको राम-भक्ति की ओर प्रेरित किया) की कटुता इतनी कठोर साधना के उपरान्त भो अभी हृदय के किसी कोने में शेष थी जिसके कारण विवश होकर स्थान-स्थान उन्हें नारी-निन्दा करनी पड़ी।

एक और अन्तिम तर्क भी सुन लें। कुछ लोगों को कहना है कि तुलसीदास जी ने समय की स्थिति को देखते हुए 'राम चरित मानस केवल लोकहित साधकों के लिये ही नहीं लिखी' है अपितु वह आत्महित साधकों के लिये भी है। उपर्युक्त तर्क प्रस्तुत करने वाले सभी लोग अप्रत्यक्ष रूप से इसे स्वीकार करते हैं कि गोस्वामी जी द्वारा नारी-निन्दा किसी न किसी रूप में अवश्य हुई है। और फिर यह कहना कि "उच्चकोटि की विरह विवेक वाली स्त्रियां 'नारी, शब्द से कामान्ध पुरुष का भी भाव ग्रहण कर सकती हैं" यह केवल कल्पना की बात है। यदि तुलसी बाबा को ऐसा अभीष्ट होता तो वे पुरुषों के लिये भी ऐसे भाव व्यक्त कर सकते थे। अन्त में हम डा० नगेन्द्र के शब्दों में यही कह सकते हैं कि "आज की नारी यदि समस्त जगत को "सीयाराम-मय" समझने वाले समद्रष्टा कवि से अधिक न्याय की माँग करे तो आज उसके क्षोभ को सहज ही समझ सकते हैं।"

प्रकाश राम कृत रामायण और तुलसी

लेखक : चमन लाल सपरू,
प्रवक्ता, हिन्दी विभाग,
श्री प्रताप कालिज, श्री नगर

कश्मीरी साहित्य में राम-काव्य अन्य भारतीय भाषाओं की अपेक्षा कम मात्रा में उपलब्ध है। १८ वीं शताब्दी से पूर्व रामाख्यारण सम्बन्धी कोई रचना कश्मीरी भाषा में उपलब्ध नहीं थी। कश्मीर में शैवमत का प्राधान्य होने के कारण अधिकतर शैवमत सम्बन्धी कृतियों की ही रचना होती रही। कश्मीरी साहित्य का आदि काल 'लल्लेश्वरी' के 'वाखों' और नुन्द ऋषि (शेख नूर-उद्-दीन के 'श्रुखों' से प्रारम्भ हुआ। लल्लेश्वरी पर शैवमत एव नुन्दऋषि पर सूफी मत का प्रभाव स्पष्ट है।

बडशाह (१४२० ई० से १४७० ई० तक) के शासन काल में भारत से अनेक ब्राह्मण कश्मीर आये और उन्होंने ही यहाँ वैष्णव मत का प्रचार किया। इसके अतिरिक्त महाराजा गुलाब सिंह (१८४६ ई० से १८५७ ई० तक) के द्वारा कश्मीर वर्तमान जम्मू-कश्मीर रियासत का अंग बनाने के उपरान्त यहां वैष्णव पद्धति का अधिकाधिक प्रचार प्रसार हुआ। भगवान राम डोगरा शासकों के इष्टदेव होने के कारण कश्मीर में अनेक स्थानों पर रघुनाथ जी के मन्दिरों का निर्माण हुआ और इस प्रकार रामभक्ति का प्रचार हुआ। यही कारण है कि १८ वीं शती के उपरान्त ही कश्मीर में 'राम-काव्य' की रचना हुई।

कश्मीरी भाषा में इस समय निम्नलिखित राम-कथा काव्य उपलब्ध हैं।[1]

१. प्रकाश रामायण—इसके लेखक पं० प्रकाश राम कुर्यगामी हैं। इसका रचना काल १९०४ विक्रमी।[2]

---

१. शोध प्रबन्ध—डॉ० ओमकार नाथ कौल

१. डॉ० बलजिन्नाथ पंडित—'काँशुर रामायण'—पृ० २६।

२. शंकर रामायण—इसके लेखक पं० शंकर कौल हैं और रिसर्च लाईब्रेरी श्रीनगर में सुरक्षित इसकी पाण्डुलिपि पर सप्त-ऋषि संवत् १९४५ दिया हुआ है जो ई० सन् १८७० के बराबर है।

३. आनन्द रामावतार चरित—इसके लेखक पं० आनन्दराम राजदान हैं। इसका रचना काल १८८० ई० के लगभग है।

४. विष्णुप्रताप रामायण—इसके रचयिता पं० विष्णुकौल हैं और इसकी रचना सन् १९१३ ई० में हुई है।

५. श्रीमद्रामायण-३-शर्मा—इसके रचयिता पं० नीलकंठ शर्मा हैं। इसकी रचना कवि ने सन् १९१९ से लेकर १९२६ ई० तक की।

६. ताराचन्द रामायण—इसके रचयिता पं० ताराचन्द ने इसकी रचना ई० सन् १९२६ में की है।

७. अमर रामायण—पं० अमर नाथ 'अमर' ने इसकी रचना १९४० में की है।

इसके अतिरिक्त अनेक कश्मीरी भक्त कवियों ने फुटकर राज भजन (क० 'लीलायें') लिखे हैं। यह अधिकांश श्रीराम के प्रति विनय के पद ही हैं, जो गीति शैली में हैं और इसमें रामकथा का वर्णन नहीं। इन कवियों में श्री लक्ष्मण जी 'बुलबुल' का नाम उल्लेखनीय है। इनकी प्रसिद्ध कृति श्री रामगीता है।

उपर्युक्त कृतियों में "प्रकाश रामायण" तुलसी के "रामचरित मानस" की ही भांति अधिक लोकप्रिय हैं। और इसके कई संस्करण प्रकाशित हुए हैं। अन्य रामकाव्य अप्रकाशित हैं। इनकी पाण्डुलिपियाँ लेखकों के वंशजों, भक्तों अथवा रिसर्च-विभाग कश्मीर सरकार के पुस्तकालय में सुरक्षित हैं। प्रकाश राम 'रामायण' के सर्वाधिक लोकप्रिय होने का प्रधान कारण है कश्मीर के गांव गाँव में उक्त रामायण हिन्दू परिवारों में तुलसी रामायण की भांति पढ़ा और सुना जाता है।

"प्रकाश राम ने भी तुलसी ही की भाँति अध्यात्मक रामायण के आधार पर रामायण की रचना की है। इसने श्रीराम को भगवान नारायण का अवतार माना है और सारा रामचरित एक नाटक माना है। बालमीकि रामायण को हम मात्र काव्य कह सकते हैं किन्तु प्रकाश राम का रामायण अध्यात्म रामायण के अनुसार धार्मिक काव्य है। कवि बालमीकि का विशेष उद्देश्य संसार के लोगों को एक ऐसी सुन्दर और मनोरम कविता को प्रस्तुत करना है, जो उन्हें संसार की चिन्ताओं और विषमताओं से मुक्त कराकर एक उच्चावस्था के आनन्द-समुद्र में डुबो दे और साथ ही साथ उनको भलाई का मार्ग सिखावे। परन्तु अध्यात्म रामायण के रचयिता ही की भांति तुलसीदास और प्रकाशराम तथा अन्य रामायण रचयिताओं का इस कार्य में विशेष उद्देश्य यह रहा है कि श्री राम की भक्ति का लोगों में प्रचार होना चाहिए। इसीलिए हम इनकी कविता को धार्मिक कविता कहते हैं।*

---

* काशुर रामायण (कश्मीरी रामायण) सं० डॉ० बलजिन्नाथ पंडित पृ० १५-१६।

प्रकाशराम के रामायण में यत्र-तत्र कुछ विविवता है जो तुलसी रामायण से सर्वथा भिन्न है। जैसे कथानक में रावण को सीता का पिता दर्शाना, मन्दोदरी को माता दर्शाना और कहीं अपनी कल्पना का प्रदर्शन। यथा—श्री राम का अपनी हथेलियों पर जटायु का दाह संस्कार करना और भगवान शिव का रावण को 'मक्केश्वर' (शिवलिंग) भेंट करना आदि, आदि।

प्रकाश रामायण से पूर्व रामकथा सम्बन्धी कोई ग्रंथ कश्मीरी भाषा में उपलब्ध न होने के कारण इसका ऐतिहासिक महत्व भी है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें कवि ने स्थानीय (कश्मीर सम्बन्धी) लौकिक तत्त्वों का समावेश किया है। कवि कश्मीर के प्राय: प्रमुख तीर्थों का, यहाँ के फूलों एवं प्राकृतिक दृश्यों का यत्र-तत्र वर्णन करने के लोभ का संवरण नहीं कर सका है। दशरथ के विलाप में 'हरमुख गंगा' (कश्मीर) की यात्रा का विस्तृत वर्णन किया है। सीता जी के भूमि में अन्तर्धान होने की वार्ता का सम्बन्ध शंकरपुर के 'शंकर्षण-नाग' के साथ जोड़ा है।

प्रकाश रामायण का सारा कथानक सात खण्डों में विभक्त है। परिशिष्ट में "लव-कुश चरित में सीता का करुणा निवेदन तो कश्मीरी साहित्य में बिल्कुल निराली चीज है।"

कवि तुलसी की भांति शैव और वैष्णवों के बीच अन्योन्याश्रय-सम्बन्ध प्रदर्शित करने में भी सफल हुआ है। वास्तव में तुलसी ही की भांति प्रकाशराम ने भी राम के लोक संग्रही स्वरूप की स्थापना की। राम के चरित्र में दोनों ने लोक और शास्त्र का समन्वय प्रस्तुत किया है। तुलसी के-राम कहते हैं :—

"शिवद्रोही मम दास कहावा। सो नर सपनेहु मोहिं न भावा॥
शंकर विमुख भगति चह मोरी। सो नारकीय मूढ़ मति थोरी॥

इसी बात को प्रकाश राम ने भी अपने रामचरित में प्रस्तुत किया है। उन्होंने भगवान शिव के द्वारा श्री राम की महिमा को गाया है। प्रकाशराम ने बालकाण्ड में ही शिव-पार्वती संवाद नामक प्रसंग में पार्वती जी द्वारा प्रश्न करने पर शिवजी द्वारा श्रीराम अवतार की महिमा का वर्णन किया है।

... ...

"वोन्दस कथ थाव तम्यसुन्द नाव ह्यन कॅत्य।
मोंकलन नारॅ नरॅकक्य निशि तमी सॅत्य॥
अगाफिल यिम मनुष्य ह्यन रामॅ सुन्द नाव।
तिमन सोरुय मनुक मलचर छलनॅ आव॥
अदय कॉछा सौर्यस मनॅ किन्य होर्यस आय।
दियस दर्शुन नियस वैकुंठ छस जाय॥
अदय कॉह लोलॅ किन्य परि रामॅ रामय।
सु प्रावी जिन्दॅ तने स्वर्ग जामय॥"

यह बात तुम मन में धारण करो जो उस (श्रीराम) का नाम लेंगे वह नर्क की अग्नि से मुक्त हो जायेंगे। जो मनुष्य अनबूझे ही राम का नाम लेंगे, वे सब प्रकार के मानसिक मैल से धुल जायेंगे। फिर भला यदि कोई मन से उसका स्मरण करेगा, उसकी आयु में वृद्धि होगी। उसे

साक्षात् दर्शन देकर उसे बैकुंठ में स्थान प्राप्त करने का अधिकारी बना देगा। फिर तो यदि कोई प्रेम से राम-राम पढ़ेगा वह जीते जी ही स्वर्गिक वस्त्राभूषण प्राप्त कर लेगा।

राम चरित मानस के बालकाण्ड में भी तुलसीदास ने श्री रघुनाथ जी की महिमा का वर्णन किया है।

कश्मीर में शैव मत का प्राधान्य था ही अतः प्रकाशराम ने शिव-द्वारा राम की महिमा का वर्णन करके जहाँ राम-भक्ति का उपचार किया है वहां साथ ही दोनों में समानता भी दर्शायी है।

महाकाव्योचित सभी विशेषतायें प्रकाशराम के रामायण में उपलब्ध हैं। इस प्रकार पर-वर्ती सभी कश्मीरी राम-काव्यों से यह उत्तम है। इसकी शैली पर फारसी मसनवियों की रजमिया शायरी का प्रभाव पड़ा है। इसमें 'शाहनामे" के समान जंग का चित्र खींचा है। छन्द विधान पर भी फारसी का स्पष्ट प्रभाव है। उस समय फारसी कश्मीर की राजभाषा होने के कारण यहाँ के साहित्यिक जीवन पर व्याप्त थी। अतः फारसी शैली एवं भाषा का प्रकाश रामायण पर अत्यधिक प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। प्रकाश राम का रामायण इतिवृत्तात्मक शैली में है वहाँ साथ ही साथ स्तुतियों के लिये उन्होंने गीतिशैली का प्रयोग किया है। गीति-शैली में रची गई स्तुतियों का कश्मीरी के परवर्त्ती गीति-काव्य पर काफी प्रभाव पड़ा है।

प्रकाश रामायण की एक और विशेषता जो तुलसी के रामचरित के अनुकूल है-वह है प्रकृति वर्णन। कश्मीर के प्राकृतिक दृश्य अनूठे हैं। उनका तादात्म्य श्री राम के चरित्र के साथ करके कवि ने अनूठा काव्य कौशल प्रदर्शित किया है। प्रकृति श्रीराम की अनुचरी है। बनवास के समय उनके अनुकूल वातावरण प्रस्तुत करती है। 'जिस किसी भी मार्ग से श्री राम, लक्ष्मण और सीता जाते हैं वहां फूल खिलते हैं। जहां वह कुछ खाने बैठते हैं वहां सुन्दर जलाशय फूट पड़ते हैं:—

पकान यमि वति गच्छान तति पोशि बागय।
ख्यवान यति केंह वुजान तति नागँ रादय॥

'इश्क-पेचान' एक पुष्प-लतिका का प्रेम काव्य में कश्मीरी कवियों ने बारम्बार वर्णन किया है। इसका बड़ा ही करुण वर्णन प्रकाशराम ने भी किया है। अशोक-वाटिका में सीता जी बिलख-बिलख कर इसलिए रो रही है-इसलिए कि क्या श्री राम उन्हें अपनायेंगे? मन्दोदरी उसे सान्त्वना दे रही है:—

'अरी, क्यों तूने 'इश्क-पेचान' का रूप धार लिया है? क्यों तूने अपने आपको सदन की रस्सी (बेल) पर चढ़ाया? क्यों तूने अपने नर्गिसी रूप को मुर्झा दिया है? अपनी आंखों से तूने अश्रुओं के बदले लहू बरसाया? अपने इस दुःखद रूप से तूने मेरी गोदी को अग्नि से भर दिया।

(कवै बापथ च्ये लोगुथ अश्क-पेचान।
मतै वदतम कथय खोरुथ रज पान॥
कवै बापथ यम्बर जल वरँ कॅरथम।
होरुथ रथ वारियाह बेब नारँ बरथम॥)

वास्तव में प्रकाश राम ने सजीव एवं मनोरम प्रकृति चित्रण करके न केवल 'रामचरित' को उत्कृष्ट काव्य-कृति बनाया अपितु प्रकृति वर्णन करने वाले अद्वितीय कवि का स्थान भी बनाया इसी प्रकार तुलसी भी प्रकृति वर्णन करने में कुछ कम नहीं।

'मानस' में अशोक वाटिका में स्थित त्रिजटा सीता जी सान्त्वना देकर जब घर चली जाती है तो विरहाकुल सीता जी आकाश के तारों को अंगार के समान देख रही है। चन्द्रमा उसके लिए अग्निमय है। अशोक वृक्ष के नये नये कोमल पत्ते उसे अग्नि के समान लगा रहे हैं।

(देखियत प्रगट गगन अंगारा।
अवनि न आवत एकउ तारा॥
पावकमय ससि स्रवत न आगी।
मानहुँ मोहि जानि हम भागी॥
सुनहि विनय मम विटय असोका।
सत्य नाम कर हरु हरु मम सोका॥
नूतन किसलय अनल समाना।
देहि अगिनि जनि करहि निदाना॥)

'अरण्य-काण्ड' में वसन्त के आगमन पर श्रीराम की स्थिति दर्शनीय है—

देखहु तात वसन्त सुहावा।
प्रिया हीन मोहि भय उपजावा॥
विरह विकल बलहीन मोहि जानेसि निपट अकेल।
सहित विपिन मधुकर खग मदन कीन्ह बगमेल॥
देखि गयउ भ्राता सहित तासु दूत सुनि बात।
डेरा कीन्हेउ मनहुं तब कटकु हटकि मनजात॥
विटप विसाल लता अरुझानी।
विविध वितान दिए जनु तानी॥
कदलि ताल बर धुजा पताका।
देखि न मोह धीर मन जाका॥
विविध भांति फूले तरु नाना।
जानु भट बिलग होइ छाए॥
... ...
मधुकर मुखर भेरि सहनाई।
त्रिविध बयारि बसीठीं आई॥
चतुरंगिनी सेन संग लीन्हें।
विचरत सबहि चुनौती दीन्हें॥

इसी प्रकार से 'किष्किन्धा काण्ड' में वर्षा-वर्णन भी अति सुन्दर हुआ है।

अन्त में यही कह सकते हैं कि तुलसी और प्रकाश राम ने क्रमशः हिन्दी और कश्मीरी में वर्णानुकूल भाषा, सरस एवं प्रभावशाली शैली में श्रीरामचरित लिखकर युग-युगों के लिए अपना नाम अमर कर दिया है।

तुलसी की भाषा

(अध्ययन की कुछ समस्याएं-कुछ समाधान)

डा० प्राण नाथ तृछल

निर्विवाद रूप से तुलसी के रचे हुए ग्रंथ 'रामलला नहछू', 'वैराग्य संदीपनी', 'रामाज्ञा प्रश्न', 'जानकी मंगल', 'रामचरित मानस', 'पावर्ती मंगल', 'सतसई', 'गीतावली', 'कृष्ण गीतावली', 'विनय पत्रिका', 'बरवै', 'दोहावली' और 'कवितावली' माने जाते हैं ।* इन ग्रन्थों में अधिकतर बहुत ही उत्कृष्ट काव्य-ग्रन्थ हैं । इन ग्रन्थों को भाषा की दृष्टि से दो मुख्य वर्गों के अन्तर्गत रखा गया है—अवधी तथा ब्रज ।

इन वर्गों को आगे और उपवर्गों में विभक्त किया गया है—पूर्वी अवधी की रचनाओं का वर्ग, पश्चिमी अवधी की रचनाओं का वर्ग, बैंसवाड़ी अवधी की रचनाओं का वर्ग** तथा पश्चिमी ब्रजभाषा की रचनाओं का वर्ग, पूर्वी ब्रजभाषा की रचनाओं का वर्ग ।***

इन दो भाषाओं के अतिरिक्त यदि किसी भाषा का प्रयोग तुलसीदास ने विधिवत् किया है तो वह है संस्कृत । परन्तु तुलसी का कोई भी ग्रन्थ संस्कृत भाषा में नहीं है । इसका कोई न कोई कारण अवश्य होगा—कुछेक की कल्पना की जा सकती है । यथा—

१. तुलसी को संस्कृत पर अधिकार नहीं था ।

२. किन्हीं अज्ञात कारणों से उसने तत्कालीन प्रचलित भाषा का प्रयोग किया । आदि···

इन दो में से प्रथम तो अत्यसंगत है क्योंकि इसके खंडन के लिए 'रामचरित मानस' में पर्याप्त स्थल हैं, जिनसे न केवल तुलसी का संस्कृत भाषा पर अधिकार ही प्रमाणित होता है, वे संस्कृत के उच्च कोटि के पद्य भी हैं ।

द्वितीय संभावना पर विचार किया जा सकता है । कह सकते हैं कि तुलसी को दैवी प्रेरणा मिली थी; इस कथन की पुष्टि के लिए 'मूल गोसाईं चरित' का यह पद्य प्रस्तुत किया जाता है:—

* कवितावली : सम्पादक, माताप्रसाद गुप्त : पृष्ठ १२ ।

** तुलसीदास की भाषा : डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव : पृष्ठ ३५२-५४ ।

*** वही : पृष्ठ ३६२ ।

"भगत सिरोमनि घाट पै, विप्र गेह करि वास ।
राम विमल जस कहि चले, उपज्यो हृदय हुलास ।।

दिन मां जितनी रचना रचते । निसि माहि सुसंचित न बचते ।।
यह लोप क्रिया प्रति द्यौस सरै । करिए सो कहा नहि बूझि परै ।।
अठवें दिन संभु दिए सपना । निज बोलि में काव्य करो अपना ।।
उचटी निंदिया उठि बैठ मुनी । उर गूँज रह्यो सपने की धुनी ।।
प्रगटे सिव संग भवानि लिए । मुनि आठहु अंग प्रणाम किए ।।
सिव भाषेउ भाषा में काव्य रचो । सुर बानिके पीछे न तात पचो ।।
सब कर हित होइ सोई करिये । अरु पूर्व प्रथा मन आचरिये ।।"*

इन पंक्तियों को ध्यान से पढ़ने से दो बातें स्पष्ट होती हैं—एक यह कि तुलसी ने 'राम विमल जस' की रचना आरम्भ की थी । दूसरी यह कि पहली बात से ही सम्बन्धित को छोड़कर शिव के आदेश पर उन्होंने 'भाषा' में काव्य रचना आरम्भ की और यह 'भाषा' तुलसी की 'निज बोलि' थी । यह परिणाम निकालने के पश्चात् इन पर यों आपत्तियां उठ सकती हैं—

१. यदि 'राम विमल जस' को कहकर 'हुलास' उपजा रचना करने का और यह 'हुलास' स्वतः स्फूर्त वाणी में व्यक्त हुआ और वह वाणी थी संस्कृत भाषा, तो साधारणतया अनुमान लगाया जा सकता है कि तुलसी की भावाभिव्यक्ति सहज रूप से संस्कृत में हुआ करती थी तो 'रामचरित मानस' से पहले की जितनी भी रचनाएँ होंगी सभी संस्कृत भाषा में होनी चाहिये । वस्तु स्थिति यह है कि तुलसी ने संस्कृत में एक भी रचना नहीं की है ।

२. 'सिव' ने क्यों कहा कि 'भाषा में काव्य रचो' तुलसी को 'स्वान्तः सुखाय' तो किसी भी हालत में नहीं, क्योंकि 'स्वान्तः सुखाय' तो वे करते ही रहे आठ दिन तक तो 'सिव' ने लोक-कल्याण के लिए ऐसा कहा होगा, जैसा कि कई भक्तजन मनवाने का आग्रह करते हैं । परन्तु क्या समूचे भारत में केवल अवधवासियों को ही 'रामायण' की आवश्यकता थी, केवल उनका ही कल्याण आवश्यक था ? उपरोक्त दोनों बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि तुलसी ने 'भाषा' में रचना न दैव-प्रेरणा से की और न वे संस्कृत में ही अपनी रचना किया करते थे ।

इस परिणाम तक पहुँचने के लिए डॉ० ग्रियर्सन की 'लोकनायकत्व' की बात भी सहायक हो सकती है । तर्क की बुद्धि को कसरत करने की छूट दें तो पूछ सकते हैं कि क्या 'लोक' केवल ब्रज-अवध ही था ? यदि 'मानस' की प्रसिद्धि तथा प्रसार की बात सोचें तो भी इसका प्रसार उत्तरी भारत में ही रहा । उत्तरी भारत के क्षेत्र-विस्तार को 'लोक' की व्यापकता के लिए उचित मान भी ले तो ये बातें स्पष्ट होती हैं :—

* मूल गोसाई चरित (द्वितीय संस्करण) पृ० १७ : तुलसी की भाषा से उद्धृत ।

१. कि तुलसी राम सम्बन्धी वर्ण्य विषय के कारण लोकनायक थे।

२. वे विशेष भाषा-प्रयोग के कारण लोकनायक थे, तथा

३. वे भक्ति-परक् साहित्य-सर्जना के कारण लोकनायक थे।

इन बातों में से हम अपना ध्यान दूसरे वक्तव्य पर केन्द्रित करते हैं।

तुलसी पूर्व तथा तुलसी के बाद के साहित्यिक भाषाओं के इतिहास से यह स्पष्ट हो जाता है कि उत्तरी भारत में दो ही सशक्त साहित्यिक भाषाएँ थीं—व्रज तथा अवधी।

अवधी के साहित्यिक भाषा होने में सन्देह न होते हुए भी जायसी तथा तुलसी की भाषा में पर्याप्त अन्तर है। इस अन्तर के, व्यक्ति-प्रतिभा, संस्कार, अध्ययन ग्रन्थों की भाषा का प्रभाव, सहधर्मियों की भाषा, गुरु-शिष्य परम्परा में शास्त्रार्थ के आधारभूत धर्म-ग्रन्थों की भाषा, आदि अनेक कारण खोजे जा सकते हैं। इसी प्रकार व्रजभाषा के सम्बन्ध में प्रमाणों के अभाव में अनुमान किया जाता है कि सूर के पूर्व व्रज-भाषा-साहित्य की परम्परा रही होगी।* सूर के पदों की भाषा का सौष्ठव इस ओर संकेत करता है। उपरिलिखित विवेचन से सिद्ध होता है कि व्रज और अवधी उत्तरी भारत में एक प्रकार की 'लिंग्वा फ्रांका' थी, सामान्य रूप से इसको सभी समझते थे और विशेष रूप सुशिक्षित लोग इसमें साहित्य सृजन करते थे; तुलसी ने भी अपनी काव्य रचना के लिए इन्हीं दो भाषाओं को चुना। इस प्रकार उनकी काव्य-सरिता साधारण जन तथा साहित्यिक जब दोनों के लिए ही हितकर प्रमाणित हुई :—

कीरति भणिति भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सब कर हित होई।।**

आचार्य भिखारीदास ने तुलसी के 'काव्यों' में भाषा-वैविध्य को अपेक्षित गुण माना है। ये कहते हैं :—

तुलसी गंग दुवौ भए, सुकविन्ह के सरदार।
इनके काव्यन्ह में मिली, भाषा विविध प्रकार।।***

तुलसी की भाषा की विविधता का सम्यक् अध्ययन करने के लिए डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने प्रामाणिक संस्करणों की आवश्यकता की ओर ध्यान दिलाया है। "कवि की भाषात्मक प्रवृत्तियों का अध्ययन एक स्वतन्त्र विषय है और उसका अध्ययन···प्रामाणिक संस्करणों के अभाव में···एक अर्ध सत्य से अधिक कुछ नहीं हो सकता।"* परन्तु जिन ग्रन्थों के संस्करण प्राप्त हैं, पाठालोचन के सिद्धान्तों के अनुसार वे प्रामाणिक न भी हों, उनमें उन भाषागत विशेषताओं में ऐसे अन्तर व

---

* भ्रमर गीत सार : सं० रामचन्द्र शुक्ल वक्तव्य : पृष्ठ ६–७।

** रामचरित मानस : बालकाण्ड : दोहा—चौपाई।

*** भिखारीदास : काव्य निर्णय : १, १७।

**** "तुलसी की भाषा" से उद्धृत : पृ० ८। लगता है डॉ० गुप्त ने बाद में अपने ये विचार बदल दिए थे जैसा कि उनके 'तुलसीदास' के तृतीय संस्करण की प्रस्तावना से स्पष्ट है और उपरिनिर्दिष्ट अंश १९६५ के संस्करण में नहीं मिलता है।

परिवर्तन आने की संभावना अति न्यून है, जिनके आधार पर तुलसी के ग्रन्थों को विद्वानों ने पूर्वी अवधी, पश्चिमी अवधी, तथा बैसवाड़ी अवधी आदि में वर्गीकृत किया है। तथापि कहा जा सकता है कि अनेक ग्रन्थों में प्रयुक्त एक ही भाषा की बोलीगत या क्षेत्रगत विशेषताओं को ध्यान में रखकर इस प्रकार के वर्ग बनाना न तर्क संगत है और न वांछित। पर एक प्रश्न यह भी हो सकता है कि क्या इन भेदक गुणों की उपेक्षा की जा सकती है ? विभिन्न कालों में लिखित होने के कारण इनमें व्याकरणगत तथा क्षेत्रगत अन्तर आने स्वाभाविक हैं। तुलसी सन्त थे, सत्संग उनका मुख्य कार्य था। अनेक भक्तों का सम्पर्क उनको प्राप्त था, विभिन्न भाषा वर्ग के व्यक्तियों के साथ सम्पर्क होने से भाषा में परिवर्तन होना स्वाभाविक है। परन्तु पूर्वी, पश्चिमी तथा बैसवाड़ी आदि होते हुए भी मुख्य रूप से उनकी भाषा को केवल भाषा के मुख्य रूप, व्यापक रूप में ही देखना उचित है—यद्यपि उसका कोई परिनिष्ठित रूप प्राप्त नहीं होता है। व्यापकता के रूप में भी उपरिलिखित दो ही नाम सामने आते हैं—अवधी तथा ब्रज।

क्या तुलसीदास के काव्य को दृष्टिपथ में रख के उनकी भाषा को किसी एक नाम से अभिहित किया जा सकता है ? यदि ऐसी चेष्टा करें भी तो अवधी और ब्रज को एकदम एक ही भाषा कैसे माना जाय, विशेषतः इस स्थिति में जबकि दोनों ही भाषाओं की अलग-अलग से स्थापना हो चुकी है। थोड़ी देर के लिए दोनों को तुलसी काव्य के संदर्भ में एक ही मान भी लें तो व्याकरण की दृष्टि से खिचड़ी ही बनेगी और कोई रूप उभर नहीं सकेगा।

यहां एक बात यह भी विचारणीय है कि तुलसी के ग्रन्थों में केवल 'रामचरित मानस' ही ऐसा ग्रन्थ है जिसको साधारण जनता पढ़ती है। उत्तर भारत में प्रचलित होने के कारण यह समझ बैठना कि 'मानस' की भाषा सबही के समझ में आती है, मात्र भ्रम होगा; हाँ, धार्मिक श्रद्धालू जनता में एक क्षमता होती है, आशय ग्रहण करने की। इस काव्य का वर्ण्य परिचित है—'रामचरित मानस' न भी लिखा गया होता, रामभक्ति में कोई कमी नहीं आई होती। भाषा में दोहा-चौपाइयों में रचित होने के कारण आस्तिक जनता ने इसको बड़े चाव से पढ़ा और अपनाया और अर्थ ग्रहण भी किया, सूक्ष्म नहीं; स्थूल, उपादेय और वांछित। परन्तु साहित्य-विद्यार्थी के लिए भाषा का पूर्ण परिचय प्राप्त करना वांछित है। तुलसी के काव्य-कलेवर को ध्यान में रखकर उस सबकी एक भाषा मानना कठिन ही नहीं अन्यायपूर्ण भी है। कवि का लक्ष्य काव्य-रचना ही था तथा भक्त का ध्येय आराध्य को प्रसन्न करना। भक्त कवि तुलसी ने भाषा नहीं गढ़ी अपितु भाषा में काव्य रचा। यह भाषा उसने उसी रूप में प्रयोग में लाई जिस रूप में प्रचलित थी। यदि ऐसी बात है तो जायसी तथा तुलसी की भाषा में और तुलसी तथा सूर की भाषा में अन्तर क्यों ?

तुलसी तथा जायसी की अवधी भाषा के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि (१) जायसी को

भाषा शुद्ध रूप से 'लोक' से ही प्राप्त हुई थी (२) उसका संस्कृत ग्रन्थों का मौलिक अध्ययन नहीं के बराबर था। अतः उसकी भाषा को वह संस्कृतनिष्ठ रूप प्राप्त नहीं हो सका जो तुलसी की भाषा को। सूर और तुलसी के सम्बन्ध में भाषा-अन्तर के बारे में कह सकते हैं कि सूर को ब्रजभाषा परम्परा में बद्ध साहित्यिक रूप में प्राप्त हुई थी, उनकी रचनाओं में ब्रजभाषा का ही प्रयोग है, जबकि तुलसी ने व्यवहृत ब्रजभाषा को अपनाया और संस्कृत ग्रन्थों के मौलिक अध्ययन के फलस्वरूप यत्र-तत्र संस्कृत भाषा का भाषा रूप में प्रयोग किया मात्र शब्दावली के रूप में नहीं।

विद्वानों ने तुलसी की भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन करते हुए तुलसी द्वारा प्रयुक्त ध्वनि समूह की चर्चा की है। स्वर-ध्वनियों का वर्गीकरण करते हुए मूल स्वरों के वर्ग में अ, आ, इ, ई, उ, ऊ ऋ (रि), ऍ, ए, ओ, ओॅ तथा औॅ रखे हैं।

जिज्ञासा होती है जानने की कि इस ध्वनि समूह को कैसे प्राप्त किया गया है ?

ऋ (रि) को स्वर-ध्वनि कैसे गिनाया गया है !

ऍ तथा ऐॅ एवं ओॅ तथा औॅ ध्वनियों को भाषा विज्ञान के किस नियम के आधार पर ध्वनि-समूह में रख लिया गया है। इस प्रकार तो अ, आ, इ, ई आदि के भी अतिह्रस्व तथा अतिदीर्घ रूप प्राप्त होते हैं।

व्यंजन ध्वनियों के बारे में भी इसी प्रकार की अटकल-बाजी की गई है। क्, ख्, ग्, घ् कंठ्य ध्वनियां हैं या कोमल तालव्य (Velar); तुलसी के काव्य में व्यवहृत च्, छ्, ज्, झ् का उच्चारण स्पर्श-तालव्य है वा स्पर्श-संघर्षी पश्च-वर्स्व्य; तथा ट्, ठ्, ड्, ढ्, मूर्द्धन्य स्पर्श ही हैं व मात्र तालव्य-स्पर्श।

अनुनासिक स्वरों को भी बहुत कम समझाया गया है। उदाहरण के लिए अ तथा अं और इ तथा इं में अर्थ भेदकता का सर्वथा अभाव है :—

डहकत[१] ∽ डहंकत[२]
गुरहि[३] ∽ गुरहिं[४]

फिर भी अनुनासिक स्वरों का विवेचन इस प्रकार दिया गया है जैसे कि यह स्वतन्त्र ध्वनियां हैं।

---

१. खेलत खात परसपर डहकत छीनत कहत करत रोगदैया—कृष्ण गीतावली १९।
२. भक्ति, विराग, ज्ञान, साधन कहि बहुविधि डहंकत लोग फिरौं—विनय पत्रिका १४१।
३. तुम्हतें अधिक गुरहि जियँ जानी—रामचरित मानस; अयोध्या काण्ड दो० १२९, चौ० ४।
४. मिले गुरहिं जन परिजन भेटत भरत सप्रीति—रामाज्ञा ६/२/२।

किसी भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन का प्रथम सोपान है उस भाषा का 'कॉर्प्स' प्राप्त करना तथा उसका ध्वन्यात्मक चिन्हों में लिप्यन्तरण करना। तुलसी की भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए उसका समस्त काव्य ही 'कॉर्प्स' है। परन्तु इस 'कॉर्प्स' को ध्वन्यात्मक लिपि में बद्ध करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह पहले ही लिपिबद्ध है। इसका ध्वन्यात्मक लिप्यन्तरण सम्भव भी नहीं। जिस किसी समय भी इसका लिप्यन्तरण किया जाये, वह उसी समय के उच्चारण के अनुरूप लिप्यन्तरण होगा न कि तुलसी की मूल भाषा का। तो क्या इस भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन की भित्ति ही कमजोर है ? ऐसा समझने का कोई कारण नहीं है। तुलसी-काव्य की भाषा को 'इडियोलेक्ट' (idiolect) मान करके उसका ध्वनि-विचार प्रस्तुत करने की आवश्यकता पहले की अपेक्षा अब बढ़ गई है। ऊपर निर्दिष्ट भाषाभेद को भुलाकर, व्रज-अवधी के पूर्वाग्रह को भूलकर तुलसी की भाषा में पद तथा पदरूपों के भेदों को स्वतन्त्र परिवर्तन (free variation) के रूप में देखना होगा। सौभाग्य से सारा 'कॉर्प्स' पद्य में उपलब्ध होने के कारण इस भाषा का वाक्य विचार कोई उलझन उपस्थित नहीं करेगा।

'मानस' में आक्रोश के स्वर

--डा० ओम प्रकाश गुप्त

सामान्यतया 'आक्रोश' का अर्थ, कोसना, शाप देना, गाली देना, धर्मानुसार कुछ दोष लगाते हुए, जाति, कुल आदि का नाम लेकर किसी को कोसना है।

साहित्य में दो प्रकार का आक्रोश चित्रित होता है—

१. व्यक्तिगत।

२. सामाजिक।

किसी साहित्यिक रचना का एक पात्र अपने वर्ग का प्रतिनिधि हो सकता है। उस दशा में उसके विचार उस वर्ग की मनोदशा का प्रतिनिधित्व करते हैं। दूसरी ओर यदि पात्र इस प्रकार का व्यवहार करता है जो विशेष परिस्थिति में संभवतः कोई अन्य व्यक्ति भी कर सकता है, किन्तु उस व्यवहार का तत्कालीन सामाजिक जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं होता, तो वह व्यवहार व्यक्तिगत समझा जाएगा। उदाहरण के लिए भरत का कैकेई के प्रति आक्रोश अपने में एक 'प्रकार' (टाइप) है, तथापि उस में सामयिक सामाजिक-राजनैतिक अवस्था के प्रति कोई प्रतिक्रिया उद्घाटित नहीं होती। न ही वह आक्रोश पारिवारिक-व्यवस्था के किसी कोण की दिशा में संप्रेषित माना जा सकता है।

प्रस्तुत लेख में उन्हीं स्थलों पर व्यक्त आक्रोश की चर्चा की गई है जहां वह व्यक्ति और समय की सीमाओं में आबद्ध न होकर तत्कालीन जनमानस के अवचेतन में डूबी मजबूरियों की अभिव्यक्ति का साधन बनता है ' चेतन द्वारा गर्हित एवं अवांछित समझे जाने वाले तत्वों को प्रकट होने का माध्यम प्राप्त होता है, आवश्यक नहीं कि साहित्यकार किसी प्रतिक्रिया को शाब्दिक शैली-विशेष द्वारा ही अभिव्यक्ति दे। वर्तमान से असंतुष्ट हो कर वह अपनी कृति में ऐसा चित्र प्रस्तुत कर सकता है जिसमें परिस्थितियों को नवीन वांछनीय रूप दिया गया हो।

हिन्दी साहित्य के विद्यार्थी तुलसीदास को प्रायः ऐसा सन्त समझते हैं जो सांसारिकता से विमुख आध्यात्मिक चिंतन में लीन रहा करता। सामाजिक तथा राजनैतिक उथल-पुथल से वह महान विचारक, उसी प्रकार अप्रभावित रहा जैसे जल में कमल।

तुलसीदास को भारतीय संस्कृति का ऐसा गायक माना जाता है जिसने आँख मूंदे पुरानी परिपाटियों को राम-कथा की लड़ी में पिरोकर उन पर आदर्श का मुलम्मा चढ़ा कर प्रस्तुत कर

दिया। फलस्वरूप कतिपय लोगों ने तुलसीदास और 'मानव' को नुक्ताचीनी का विशेष विषय बनाया। हिन्दी की एक पत्रिका ने इस प्रकार के लेखों को विशेष प्रत्साहन भी दिया :—

'बुद्धि और तर्क से दूर, तुलसीदास की विचारधारा ने हिन्दुओं में अंध विश्वास, कायरता और दब्बूपन की भावना भर कर हिन्दुओं को सैकड़ों वर्षों की गुलामी ढोने में योग दिया।'* कोई भी साहित्यकार समय की देन होता है। सामाजिक परिस्थितियों से असंपृक्त रह कर रचना करना उसके लिए सम्भव नहीं होता। सामाजिक तथा राजनैतिक त्रुटियों का उद्घाटन एक बात है, उनके सुधार का प्रयास दूसरी और उन्हें समूल एवं एकदम बदल देने के लिए विद्रोह का झंडा उठा लेना तीसरी। जिन परिस्थितियों में राणा प्रताप जैसा एक-आध वीर ही स्वतन्त्रा के दीपक को प्रज्वलित रखने का प्रयास कर रहा था; ऐसी शासन सत्ता जिसे विदेशी समझा जा सकता था, अपनी शक्ति की चरमसीमा पर थी, उस समय तुलसीदास ने कविता का आश्रय लेकर अ।नी बात कहने का प्रयास किया। परिस्थितियों के अनुरूप कुछ आधारभूत धुरियों को थामे रखना उन्होंने आवश्यक समझा। शताब्दियों बाद स्वामी दयानन्द जैसे क्रान्तिकारी ने भी जिस दृढ़ता से वेद की धुरी को थामे रखा, वह दृढ़ता कुछ लोगों की दृष्टि में अनिवार्य बंधन था।** यदि गोस्वामी तुलसीदास अपने असंतोष को सीधे कह देते तो वे शासकीय कोप के भाजन हो सकते थे तथा हिन्दू-समाज के 'अगुआओं' की दृष्टि में भर्त्सना के। लोक भाषा में राम-कथा कहने के कारण उन्हें इसका पर्याप्त अनुभव हुआ था। लेकिन उन्होंने अपनी बात अपने ढंग से कह दी, इसमें दो मत नहीं हो सकते।

बालकांड से ही तुलसीदास अन्यायी शासन-व्यवस्था को कोसना शुरू कर देते हैं।

जब-जब होइ धरम के हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनुसुर धरनी॥
तब-तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरिहिं कृपा निधि सज्जन पीरा॥

जब मुनियों ने राम को यह बताया कि राक्षसों ने मुनियों को खा डाला है, ये सब उन्ही की हड्डियों के ढेर हैं, तो यह सुनते ही राम के नेत्र सजल हो उठे और तब—

निसिचर हीन करउं महि भुज उठाइ पन कीन्ह॥

उन्हीं राम का अवलम्ब पाकर मुनिजन निर्भय हो गए थे। यह अवलम्ब ईश्वरीय शक्ति का ही नहीं, मानव की उस शक्ति का था जो अन्याय को सहन नहीं कर सकती। राक्षसों का नाश करते समय राम ने उन्हें अपनी अलौकिक शक्ति से परिचित नहीं करवाया। अपितु कहा—मैं मनुष्य हूँ, बालक हूँ, किन्तु दुष्टों का नाश करूंगा।

---

*सुदर्शन चोपड़ा : तुलसीदास और हिन्दू समाज, सरिता, फरवरी, द्वितीय अंक १९६९।

** अगर ऋषि दयानन्द उतनी मजबूती से वेदों को नहीं पकड़ते और उन्हें स्वतः प्रमाण नहीं मानते तो ऋषि दयानन्द की बात हिन्दू समाज में बिल्कुल नहीं सुनी जाती और उन को उसी प्रकार घृणा की दृष्टि से देखा जाता जिस प्रकार ईसाई और मुसलमानों को…'। आचार्य चतुर्सेन, धर्म के नाम पर, पृष्ठ-१५४।

जद्यपि मनुज, दनुज कुल बालक । मुनि पालक खल सालक बालक ।।

जिस समय हिन्दू-स्त्रियों का सतीत्व लूटा जा रहा था उस समय लुटेरों का प्रतीक रावण 'भड़िहाई' करता हुआ सीता को चुराने आया और तुलसीदास ने काक भुशुण्डि से कहलवाया—

इमि कुपंथ पग देत खगेसा । रह न तेज बुधि बल लेसा ।।

सीता की भांति अनेक असहाय नारियों पर विपदा आन पड़ी थी। उनकी दशा 'जिमि मलेछ बस कपिला गाई' की थो। ऐसे कठिन समय में तुलसीदास अन्याय से लोहा लेने के लिये जटायु जैसे जनों का आह्वान कर रहे थे । जटायु सीता को सांत्वना देता हुआ कहता है—

सीते पुत्रि करेसि जनि त्रासा । करिहउं जातुधान कर नासा ।।
धावा क्रोधवंत खग कैसे । छूटइ पबि परबत कहुं जैसे ।।

'निर्बल के राम' के प्रताप रो उनके भक्त जन अनेक दुष्कर कार्य पूर्ण करते हैं किन्तु कहीं भी वे इस प्रतीक्षा में बैठे नहीं रहते कि राम आएंगे, तभी हम संघर्ष करेंगे । संघर्ष का स्वर सामन्तों और उनके महलों से निकाल कर तुलसीदास साधारण मनुष्यों और कुटियाओं एवं वनों में ले जा रहे थे । ब्राह्मण-क्षत्रिय से लेकर कोल-भील आदि वन्य जातियों में राम-भक्ति का प्रसार दिखाने वाले तुलसी के क्रांतिकारी स्वर यदि किसी को सुनाई न दें तो उसमें तुलसीदास का क्या दोष है ? जिस युग में जाति के मेरुदण्ड समझे जाने वाले योद्धा, स्वार्थवश, जाति को सही नेतृत्व देना भूल गए थे, अथवा असहाय अवस्था में मारे-मारे फिरने के सिवाय उनके सामने कोई चारा न था। उस युग में 'मानस' का रचयिता जटायु का आदर्श प्रस्तुत कर रहा था। बूढ़ा जटायु अपनी चोंच के प्रहार से ही अन्याय का विरोध कर रहा था।

चोंचन्ह मारि बिदारेसि देही ।

हमारे पूर्वज हमारी दशा पर आँसू बहा रहे होंगे, हमारी कापुरुषता पर लज्जित होंगे । इसीलिये राम जटायु से कहते हैं :—

सीता हरन तात जनि कहहु पिता सन जाइ ।
जौं मैं राम त कुल सहित कहिहि दसानन आइ ।।

जानकी को भी राम की शक्ति का विश्वास है । इसीलिए उन्होंने रावण से पूछा—

खल सुधि नहिं रघुबीर बान की ?

हनुमान सीता को धीरज बंधाते हुए कहते हैं :—

निसिचर निकर पतंग सम रघुपति बान कृसानु ।
जननी हृदयं धीर धरु जरे निसाचर जानु ।।

क्या यह सच है कि तुलसीदास ने राम की कथा गा-गा कर दुःख भुला देने का मन्त्र दिया था ? इस विषय पर विचार करने से पूर्व 'मानस' का वह भाग पढ़ना चाहिये जहां राम सागर से

सविनय, पथ की याचना करते हैं। विनय का प्रपंच लक्ष्मण को तनिक भी सुहाता नहीं। इसीलिए वह कहते हैं :—

कादर मन कहुं एक ग्राधारा। दैव-दैव ग्रालसी पुकारा ।।

यही विनय जन्य 'भाग्य-भरोसा' ही हिन्दू जाति के पतन का कारण तथा विदेशी सत्ता का सबसे बड़ा बल था। ग्रन्यायी हमारी इस कमजोरी से भली भांति परिचित थे। तुलसीदास रावण के मुख से कहलाते हैं :—स्वभाव से ही डरपोक विभीषण के वचन को प्रमाण करके उन्होंने सागर से बाल-हठ ठाना है। मैंने इसी उदाहरण से राम के बल ग्रौर बुद्धि की थाह पा ली।

सहज भीरु कर वचन दृढ़ाई। सागर सन ठानी मचलाई ।।
मूढ़ मृषा का करसि बड़ाई। रिपुबल बुद्धि थाह मैं पाई ।।

तीन दिन बीत गये विनय करते किन्तु सागर न माना। निदान—

बोले राम सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीति ।।

काकभुशुण्डि जी गरुड़ जी से कहते हैं— सुनिये, चाहे कोई करोड़ों उपाय करके सींचे, केला तो काटने पर ही फलता है। नीच विनय से नहीं मानता, वह डाँटने पर ही झुकता है।' ग्रन्यायी रावण को राम-दूत ग्रंगद से कहलवाया है—ग्ररे मंद बुद्धि ! सुन !!

जानेउ तव बल ग्रधम सुरारी। सूनें हरिग्रानि पर नारी ।।

'ग्रब हम क्या करें ? क्या जैसे को तैसे वाली नीति ग्रपना लें ? वैसा भी कर सकते हैं। किन्तु ग्रादर्शों की शृंखलाग्रों में बंधे होने के कारण ऐसा नहीं कर रहे हैं। क्या हम भी तुम्हारी युवती बालाग्रों या पत्नियों को उठा ले जाएँ ? इसमें क्या बड़ाई होगी ?'

ग्रादर्शों की परिपाटी को ग्रक्षुण्णय रखते हुए राम 'नयपाल' ने पशु-समान जीवन-यापन करने वाले बनवासियों तथा रावण के भाई विभीषण को ग्रसत्य का विरोध करने के लिए सन्नद्ध कर लिया। 'मानस' में शिवजी, उमाजी से कहते हैं—

विभीषण क्या कभी रावण के सामने ग्रांख उठाकर भी देख सकता था ? परन्तु श्री रघुवीर के प्रभाव से ग्रब वही काल के सामने ग्रन्यायी रावण से भिड़ रहा है।

भयभीत वानरों को राम द्वारा दिया गया ग्रभय का यह मन्त्र ग्राक्रांत ग्रौर संत्रस्त जनता का कितना बड़ा सम्बल है—

सुमिरेहु मोहि डरपहु जनि काहू ।।

तुलसीदास पर एक ग्राक्षेप यह भी किया जाता है कि उन्होंने भारतीय समाज को वर्ण व्यवस्था की बेड़ियों में जकड़ने में कोई कसर उठा न रखी। ब्राह्मण-शाही के ऐसे साम्राज्य का

निर्माण उन्होंने किया जिससे छूटने के लिए निरीह शूद्र आज भी छटपटा रहे हैं। इसमें सन्देह नहीं कि राम राज्य में सभी लोग वर्णाश्रम-धर्म का पालन करने वाले थे तथा मानस में स्थान-स्थान पर ब्राह्मणों के महत्व का प्रतिपादन किया गया है किन्तु तुलसीदास 'ब्राह्मणशाही' के अनाचार के भुक्तभोगी थे। फिर वह इसके पोषण में चौपाइयों पर चौपाइयां और दोहों पर दोहे कहे जा रहे थे, यह आश्चर्य का विषय है। दूसरी ओर डा० रामविलास शर्मा के ये शब्द विचारणीय हैं :—

'वास्तव में तुलसी के राम पर कुछ पक्षपात का दोष भी लगाया जा सकता है कि उच्च वर्णों में से किसी को उन्होंने न तो सखा कहा, न भरत सम भ्राता कहा। यह स्नेह मानो उन्होंने वर्णाधम लोगों के लिए ही रख छोड़ा था। तुलसी का राम-राज्य वर्णहीन नहीं हैं। लेकिन सरयू के राजघाट पर चारों वर्ण एक साथ स्नान जरूर करते हैं।

राजपाट सब विधि सुन्दर वर।
मज्जहिं तहाँ बरन चारिउ नर॥

इस तरह के राज घाटों का आज भी कितना अभाव है, सभी लोग जानते हैं। इसलिए जब उत्तर-कांड में हम तुलसी को इस बात पर क्षोभ प्रकट करते देखते हैं कि शूद्र ब्रह्मणों की बराबरी करने लगे हैं, तब हम इसी नतीजे पर पहुँचते हैं कि या तो उनके विचारों में अन्तर्विरोध है या पुरोहितों का चमत्कार है जिन्होंने अपने काम की बातें मिलाकर राम-चरित-मानस को अपने अनुकूल बनाने की कोशिश की।*

तुलसीदास ऐसे ब्राह्मण के लिए चिंतित थे जो अपने धर्म से विमुख हो गया हो—

सोचिए बिप्र जो बेदबिहीना।
तजि निज धरमु विषय लयलीना॥

यदि हम तुलसीदास की रामायण में अछूतों की दशा देखते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि संसार की दृष्टि में 'पतित'—ये लोग प्रभु को अत्यन्त प्रिय हैं। कहीं भी राम उनकी छाया से दूर नहीं रहते, कहीं उन्हें हेय नही बताते। इन 'नीचों' से मिलने की जितनी ललक राम के हृदय में है, उतनी कहीं भी ब्राह्मणों से मिलने की नहीं। 'अछूतों' को समाज में 'उच्च' वर्णों के समकक्ष स्थान दिलाने से पूर्व एक आवश्यक कार्य था। वह यह कि लोकमानस में विद्यमान उन ग्रन्थियों का निराकरण किया जाए जिनके कारण इन लोगों को निम्न समझा जाता था। इन्हें उचित स्थान दिलाने के लिए तुलसी ने रामनाम रूपी सीढ़ी की रचना की और उच्च वर्ण वालों से बोले—'है तुम में कोई जो इस अचूक रीति के विरुद्ध बोल सके?'

स्वपच सबर जमन पांवर कोल किरात।
रामु कहत पावन परम होत 'भुवन विख्यात॥

* डा० रामविलास शर्मा, प्रगतिशील साहित्य की समस्याएं (१९५७) पृष्ठ—१७१

किसी तार्किक तत्व-ज्ञानी की तुलना में ईश्वर को सरल-हृदय अधिक प्रिय है ; यह सिद्धांत तुलसी पुरातन सिद्धांतों को खरी खोटी सुनाए बिना किस सबलता से प्रस्तुत करते हैं, वह तुलसी-दास की स्थापना-शैली का सुन्दर उदाहरण है—

वेद बचन मुनि मन अगम ते प्रभु करुणा ऐन।
बचन किरातन के सुनत जिमि पितु बालक बैन ।।

समाज जिन्हें तिरस्कृत समझता था, तुलसीदास के प्रभु उन्हें पुत्र की न्याईं देख रहे थे; क्या यह कम क्रांतिकारी बात थी ?

गुह, केवट, शबरी, जटायु, कोल-किरात और अन्य बनवासी राम को प्रिय हैं; उनके कारण भरत को प्रिय हैं। तुलसीदास यहीं पर संतोष नहीं करते। गुरु विशिष्ट राम-सखा से किस प्रकार मिले, यह द्रष्टव्य है—

राम सखा रिषि बरबस भेंटा।
जनु महि लुठत सनेह समेटा ।।

लक्ष्मण से भी अधिक आनन्दित हुए वह ब्राह्मण-शिरोमणि उस 'नीच' से मिलकर !

'जेहि लखि लखनहुं ते अधिक मिले मुदित मुनिराउ।'

इस क्रांतिकारी मिलन पर देवताओं के इष्ट राम प्रसन्न थे, तो शेष देवता पीछे कैसे रहते ? इसीलिए—

'नभ सराहि सुर बरसहिं फूला।'

'हमारी इतनी ही बहुत बड़ाई है कि हम आपके बासन-बसन चुरा नहीं लेते—'कहने वाले वनवासियों के हृदय में कितनी व्यथा थी, अनाचार सह लेने का कैसा भाव था, वह करोड़ों उपदेशों से समाप्त नहीं हो सकता था। तुलसीदास ने इस मानसिक रोग को कुशल मनोविश्लेषक की दृष्टि से परखा और उपयुक्त निदान प्रस्तुत किया जिससे ग्रन्थियां खुलती चली गयीं।

राम की कुटिया के निर्माण के लिए देवता विश्वकर्मा को साथ ले कर चले। भगवान की रुचि वे भली भांति समझ गए थे। इसीलिए वे सब कोल-किरातों का वेश धारण करके आए। जिन प्रभु का स्नेह प्राप्त करने के लिए देवताओं को भी कोल-किरातों का वेश धारण करना पड़ा उन प्रभु के हृदय में उन अकिंचनों के प्रति कितना स्नेह है, यह आसानी से समझा जा सकता है। जो लोग अछूतों के लिए मन्दिरों के द्वारा बन्द रखते थे, तुलसीदास के ये शब्द क्या उन्हीं के लिए नहीं थे ?

रामहि केवल प्रेमु पिआरा। जानि लेउ जो जाननिहारा ।।
राम सकल बनचर तब तोषे। कहि मृदुबचन प्रेम परिपोषे ।।

जिन भगवान ने 'नर तन धरेहु संत सुर काजा'। उनके निवास के लिए वाल्मीकि ने जो स्थान गिनाए, उनमें एक यह भी था–

जाति पांति धनु धरमु बड़ाई । प्रिय परिवार सदन सुखदाई ।।
सब तजि तुम्हहि रहइ उर लाई । तेहि के हृदयं रहहु रघुराई ।।

सामाजिक व्यवस्था में शूद्रों के साथ-साथ दयनीय अवस्था थी नारी की । तुलसीदास की नारी सम्बन्धी विचारधारा पर आक्षेप करने वालों ने 'ढोल गंवार शूद्र पशु नारी···' तो मानो आदर्श-वाक्य बना लिया है । हम इस बात को भुला नहीं सकते कि तुलसीदास समाज की उपज थे एवं वह यह भी जानते थे कि उस व्यवस्था में आद्योपांत परिवर्तन एक ही झटके से सम्भव नहीं । साथ ही हमें यह भी याद रखना होगा कि तत्कालीन व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में जितना ऊंचा वह स्त्री को उठा सकते थे, तुलसीदास ने उठाया है ।

नारी के प्रति होने वाला अन्याय निम्न जातियों में आश्चर्य जनक रूप से––प्राप्य नहीं है । वनवासी स्त्रियां जिस स्वच्छन्दता से सीता जी से मिलती हैं, वह उनके वन्य जीवन का प्रसाद है । किन्तु नागरिक एवं उच्च सभ्यता में नारी को अनेक अधिकारों से वंचित रखने वाले तुलसी दास वनवासिनी स्त्रियों को राम-दर्शन से वंचित नहीं करते । उमा को निःसन्देह राम-कथा सुनाने में शिव हिचकिचाए किन्तु जो नारियां भगवान के लीला-चरित्रों की प्रत्यक्ष दर्शिका थीं तथा उनमें अपना योगदान दे रही थीं, उनके प्रति कोई अनुचित शब्द भी प्रयुक्त नहीं हुआ है । रामकी चरण रज उस अहिल्या का उद्धार करती है जिसने जानबूझ कर कोई पाप न किया था । वस्तुत: स्त्री को किस प्रकार के अन्याय का सामना करना पड़ता है, अहिल्या का चरित्र उसका बहुत अच्छा उदाहरण है । ऐसी निर्दोष नारियों के उदारक थे राम । आक्षेप-कर्त्ताओं का यह कथन है कि अहिल्या को 'चरण धूलि' से मुक्ति दिलवा कर नारी का अपमान किया गया है, उचित नहीं जान पड़ता क्योंकि तुलसीदास राम-भक्ति और राम-सेवा को ही सर्वदुःख-भंजन मानते थे । "नारी को अज्ञान की खान मानने वाले" तुलसीदास के राम बालिको इस बात के लिए धिक्कारते हैं कि तूने अपनी पत्नी की सीख पर ध्यान नहीं दिया ।

अनुज बधू भगिनी सुतनारी । सुनु सठ कन्या सम ए चारी ।।
इन्हइ कुदृष्टि बिलोकई जोई । ताहि बधें कछु पाप न होई ।।
मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना । नारि सिखावन करसि न काना ।।

जब शबरी ने प्रभु से कहा कि मैं किस प्रकार आपकी स्तुति कर सकती हूं । मैं तो नीच जाति की, अत्यन्त जड़मति हूं । तब प्रभु ने स्पष्ट शब्दों में कहा––"भामिनि ! सुनो । मैं केवल भक्ति का नाता मानता हूं । जाति-पांति, कुल, धर्म, बड़ाई, धन, बल, कुटुंब, गुण, चतुराई–– (इन सबके होने पर भी) भक्ति-हीन नर जल-हीन बादल के समान होता है । "तत्पश्चात् भगवान

ने शबरी को नवधा भक्ति का उपदेश दिया। इसके फौरन बाद राम, नारद के सामने आ जाने पर, स्त्रियों को अवगुणों का समूह बताने लगते हैं—यह तर्क संगत नहीं जान पड़ता। तुलसीदास की रामायण में कितना प्रक्षिप्तांश है, उसका निर्णय करने में एक बड़ी बाधा विद्वानों का पूर्वाग्रह भी है। तुलसीदास का एक चित्र हमारे संस्कारों का अंग बन गया है। मध्यकालीन सामाजिक, धार्मिक व्यवस्था का जितना बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन हो, उसे प्रामाणिक मान लेने में हमें कोई हिचकिचाहट नहीं होती।

सारी रामायण में प्राय: दो उदाहरण ऐसे दिए जाते हैं जब नारी के हृदय का आक्रोश आह बन कर सामने आ जाता है—

(१) पार्वती के विवाह के समय मैना के शब्द—

कत बिधि सृजीं नारी जग माहीं।
पराधीन सपनेहुं सुख नाहीं॥
भै अति प्रेम बिकल महतारी।
धीरज कीन्ह कुसमयु बिचारी॥

(२) सीता-विवाह के अवसर पर कहे गए ये शब्द—

कहहिं बिरंचि रचीं कत नारी॥

किन्तु नारी के प्रति हो रहे अन्याय के विषय में तुलसीदास की क्या विचार धारा थी, उसका सही मूल्यांकन पूर्वाग्रह-मुक्त' हृदय से रामायण के उन स्थलों का पारायण करने से हो सकता है, जहां स्त्रियां राम और सीता की अगवानी करने के लिए उमड़ पड़ती हैं। वन हो या नगर स्त्रियां कहीं भी उस प्रकार कुंठित और दमित अनुभव नहीं करतीं जिस प्रकार की व्यंजना "तुलसीदास की (?)" अनेक उपदेशात्मक सूक्तियां में हुई है। 'मानस' में आक्रोश को स्वर प्राप्त हुआ है—चाहे यह सारंगी के तारों द्वारा हुआ हो, चाहे शंख-ध्वनि द्वारा, इसमें संदेह नहीं कि उस स्वर का प्रभाव निश्चित, रचनात्मक तथा इतना गहरा है कि वह लोकमानस की गहनतम परतों तक पहुंच गया है।

तुलसी काव्य में संगीतात्मकता

——डा० जगदीशराम शर्मा

भक्ति काल के समूचे साहित्य में गेय पद रचना की प्रवृत्ति बहुत प्रबल है। सारा भक्ति युग इस शैलीगत विशेषता से पूर्ण है। भक्ति सम्प्रदायों में लीला-गान की महत्ता स्वीकार की गई है। भगवान् के मधुर स्वरूप-वर्णन के लिए ही भक्त कवियों ने गेयता को अपनाया। एक एक पद में भगवान् की लीला का सुन्दर चित्र प्रस्तुत करना ही भक्त कवि का अभीष्ट रहा था। इस युग की मूल प्रवृत्ति के रहस्य में जाने से स्पष्ट पता चलता है कि ये कवि भक्त रूप में भगवान् के भजन के लिये कविता करते थे। जो स्वयं संगीतज्ञ थे वे मन्दिर में स्वयं जा कर गाते थे और जो संगीतज्ञ नहीं थे वे केवल रचना करते थे और मन्दिर में गायक उन भजनों को गाते थे तथा उपस्थित जन समाज उनका अनुकरण करता था। इस प्रकार से इस युग का सारा कवि-समाज गेय-पद शैली में कविता करता और सर्वसाधारण की चेतना में भगवान के प्रति अनुराग की सृष्टि करता था।

अन्य भक्ति कालीन कवियों की भांति गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं में भी संगीत का शास्त्रीय पक्ष बहुत प्रबल है। गीतावली' तथा 'विनय पत्रिका' के सभी पद संगीतज्ञों द्वारा आकाश वाणी तथा अन्य संगीत सम्मेलनों आदि में कुशलता पूर्वक गाये जाते हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में बहुत कम राग-रागिनियों का प्रयोग किया है।

'विनय पत्रिका' के २७९ पदों का रागानुसार विभाजन इस प्रकार है :—

नाम राग		पद संख्या
१. आसावरी	...	७
२. कल्याण	...	६९
३. कान्हरा	...	५
४. केदारा	...	६
५. गौरी	...	१२
६. जैतश्री	...	३

नाम राग		पद संख्या
७. टोडी	...	५
८. दण्डक	...	१
९. धनाश्री	...	३४
१०. नट	...	३
११. बसन्त	...	४
१२. बिलावल	...	३१
१३. बिहाग	...	२७
१४. भैरव	...	१०
१५. भैरवी	...	६
१६. मलार	...	१
१७ मारु	...	१
१८. रामकली	...	२७
१९. ललित	...	३
२०. विभास	...	१
२१. सारंग	...	४
२२. सूहोबिलावल	...	२
२३. सोरठ	...	१७
कुल पद संख्या		२७९

श्री कृष्ण गीतावली में उन्होंने कुल ६१ पद लिखे हैं, जिनका रागानुसार विभाजन निम्न-लिखित है :—

नाम राग		पद संख्या
१. आसावरी	...	६
२. कान्हरा	...	३
३. केदार	...	१०
४. गौरी	...	११
५. धनाश्री	...	६
५. नट	...	१
७. बिलावल	...	७
८. मलार	...	१३
९. ललित	...	१
१०. सोरठ	...	३
	कुल पद संख्या	६१

संगीतारककता की दृष्टि से किसी भी कवि की विवेचना करते समय निम्नलिखित बातें सामने आती हैं :

(१) रचनाओं में शास्त्रीय संगीत का निर्वाह

(२) रागों की भावानुकूल स्थिति तथा

(३) शब्द-योजना और संगीत

गोस्वामी तुलसी दास की रचनाओं में शास्त्रीय संगीत का सर्वत्र निर्वाह है । उन्होंने अपनी पद रचना विभिन्न राग–रागिनियों के आधार पर की है, जिनमें से 'विनय पत्रिका' तथा 'गीतावली' का उल्लेख ऊपर दिया गया है ।

तुलसीदास जी की रचनाओं में प्रायः शब्द-भण्डार का बहुत प्राधान्य है अतः उनके पदों में कहीं कहीं अन्तरे बहुत लम्बे हो जाते हैं जिससे उनके गायन में गायक कुछ कठिनाई अनुभव करता है जैसेः––

मन इतनोई या तनु को परम फलु ।
सब अंग सुभगबिन्दु माधव छवि तजि
सुभाव अवलोकु एक पलु ।।

उक्त पद 'राग जैतश्री' में है । इसमें 'टेक' स्वाभाविक है किन्तु दूसरी पंक्ति में विस्तार के कारण गायक को पर्याप्त स्वर विस्तार का अवसर नहीं मिल पाता । परन्तु यह दोष सर्वत्र नहीं है । तुलसीदास जी भावाभिव्यंजना को प्रधान मानते थे, संभवतः कुछ पदों में भावातिरेक के कारण वर्णन का मोह अधिक हो गया हो । इस के विपरीत उनके ऐसे पदों की भी कमी नहीं जिनमें स्वर विस्तार के लिए गायक को पर्याप्त स्थान मिल जाता है जैसेः––

जाऊं कहां तजि चरण तुम्हारे ।
काको नाम पतित पावन जग केहि अति दीन प्यारे ।।१।।

कौन देव बराइ विरदहित, हठि हठि अधम उधारे ।
खग, मृग, व्याध, पषान, विटप जड़ जवन कवन सुर तारे ।।२।।

देव, दनुज, मुनि, नाग, मनुज सब माया विवश विचारे ।
तिन के हाथ दास तुलसी प्रभु कहा अपन पौ हारे ।।३।।

उपर्युक्त पद में संगीत की योजना स्वाभाविक रूप से हुई है ।

'विनय पत्रिका' के आरम्भ के कुछ स्तोत्रों तथा बीच के कुछ लम्बे पदों को छोड़कर सभी पद्य शास्त्रीय संगीत का श्रेष्ठ आधार हैं । हृदय की भावुकता ने पदों में आंतरिक संगीत की छटा उत्पन्न कर दी है ।

संगीत के क्षेत्र में रस की कल्पना जिस रूप में मानी गई है वह काव्य में मान्य रस कल्पना से भिन्न है। काव्य में एक पद्य भिन्न-भिन्न भावों की सृष्टि नहीं कर सकता, किन्तु एक राग में संगीतज्ञ कुछ हेर फेर के साथ करुणा, उल्लास दोनों भावों की अभिव्यक्ति कर सकता है। उदाहरण के लिये राग मल्हार में करुण, विरह, उल्लास और क्रोध सब प्रकार की अभिव्यक्ति की जा सकती है। 'कृष्ण गीतावली' में तुलसी ने तीन बार इस राग का प्रयोग किया है और तीनों बार विभिन्न अनुभूति का चित्रण है:--

ब्रज पर घन घमण्ड कारे आये।
अति अपमान बिचारि आपनो कोपि सुरेस पठाये॥
दमकति दुसह दसहुं दिसि दामिनी भयो गगन गम्भीर।
गरजत घोर वारि धर-धावत प्रेरित प्रबल समीर॥
बार बार पविपात, उपलघन बरषत बूंद विसाल।
सीत-सभीत पुकारत आरत गो सुत गोपी ग्वाल॥

उपर्युक्त पद में कवि ने भयंकर वातावरण का उल्लेख किया है। जबकि निम्नलिखित पद में परिस्थिति कुछ भिन्न है--

कोउ सखि नई बात सुन आई।
यह ब्रज भूमि सकल सुरपति सों, मदन मिलिक करि पाई॥
घन घावन, बगपांति पटो सिर, बेरख तड़ित. सोहाई।
बोलत पिक नकीब गरजनि मिस, मानह फिरति दुहाई॥

निम्नलिखित पद में अनुभूति की विरहजन्य अवस्था का मार्मिक चित्रण है:--

जो पै अलि! अन्त इहै करिबो हो।
तो अगनित अहीर अवलनि को हठि नहियो दरि बोहो॥
ज्यों प्रपंच करि नाम प्रेम फिरि अनुचित आचरि बोहो।
तो मथुराहि महामहिमा लहि सकल ढरनि ढसि बोहो॥
दै कूबरिहि रूप ब्रज सुधि भए लौकिक डर डरि बोहो।
ग्यान विराग काल कृत करतव हमरेहि सिर धीर बोहो॥

संगीत में रस का आधार स्वर विस्तार इसलिए माना गया है कि उस में प्रत्येक शब्द स्वर विधान को आत्मसमर्पण कर देता है। शब्द की महत्ता न रह कर उसके स्वर विस्तार को महत्ता प्राप्त हो जाती है। इन्हीं तीनों पदों में संगीत के आंतरिक पक्ष की विवेचना के लिए भी पर्याप्त सामग्री प्राप्त हो जाती हैं। गोस्वामी जी इस ओर पर्याप्त रूप से सचेष्ट रहे हैं। आंतरिक संगीत विविध प्रकार की वीप्सा, अनुप्रास और यमक पर आधारित है। शब्द योजना ही आंतरिक संगीत का सृजन करती है। अनुप्रास की छटा इन पद्यों में दर्शनीय है।

गोस्वामी जी ने पद रचना करते समय रागों की प्रकृति को भी ध्यान में रखा है। राग मारु प्रायः वीर अथवा रौद्र रसात्मक अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त माना जाता रहा है। इस कारण तुलसी ने इस राग का प्रयोग प्रायः ऐसे पदों में किया है, जिनमें कठोर भावों की अभिव्यक्ति हुई है। उदाहरणार्थ गीतावली के लंका काण्ड का यह पद द्रष्टव्य है:--

मानु अजहुं सिष परिहरि क्रोधु।
पिय पूरो आयो अब काहि कहु-करि रघुवीर विरोधु।।
जेहि ताडुका सुबाहु मारि मखराखि जनायो आपु।
कौतुक ही मारीच नीच मिस प्रकटयो त्रिसिष प्रतापु।।

इस पद्य में राम के प्रताप का वर्णन ही नहीं अपितु शंभु के प्रति क्रोध का भाव भी समन्वित हैं।

राग आसावरी कोमल प्रकृति का राग है। अतः शान्त, करुण, शृङ्गार जैसे रसों की अभिव्यक्ति अथवा हर्षोल्लास की अभिव्यक्ति के लिए यह राग अधिक सहायक है। इस राग में तुलसी दास ने निम्नलिखित पद भी लिखा है:--

आजु सुदिन सुभघरी आई।
रूप सील-गुन धाम रामनृप भवन प्रगट गए आई।।

एक और पद्य भी द्रष्टव्य है:--

अवधि आज किधौं, औरो दिन द्वै हैं।
चढ़ि घौरहर विलोकि दषिन दिसि बूझधों पथिक कहां ते आये वे हैं।।

राग सोरठ मध्यकालीन कवियों का प्रिय राग रहा है। तुलसी ने इस राग का प्रयोग ऐसे पदों में किया है, जहां उन्होंने अपने हृदय के दैन्य का निवेदन किया है अथवा वात्सल्य, वियोग, करुणा जैसे भावों की अभिव्यक्ति की है।

मधुकर कहहु कहन जो पारो।
नाहिन बलि अपराध रावरो, सकुचि साध जनि मारो।।

प्रस्तुत पद्य में गोपियों की व्यथा एवं दैन्य का वर्णन अत्यन्त मार्मिक हुआ है। इस प्रकार राग का भावानुकूल चयन करने में तुलसी की प्रतिभा कहीं भी किसी कवि से पीछे नहीं रह पाई है।

रागों के समय का भी विशेष महत्व है। भैरव एवं ललित आदि राग प्रातः कालीन सन्धि प्रकाश राग हैं। तुलसी ने इन रागों में जो पद बांधे हैं, उनमें या तो प्रातः कालीन शोभा का निरूपण अथवा भगवत-नामस्मरण या राम को सोते से जगाए जाने का उल्लेख किया है। उदाहरणार्थ राग विभास में एक पद राम के प्रातः कालीन जागरण का वर्णन करता है:—

'भोर भयो जागहु रघु नन्दन'

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि तुलसी ने संगीत के शास्त्रीय विधान की रक्षा करते हुए भावों के अनुकूल रागों का चयन तथा शब्द योजना पर आधारित आन्तरिक लयात्मक सौंदर्य की रक्षा की है।

अतः संगीतात्मकता के सभी गुण तुलसी काव्य में विद्यमान हैं।

तुलसी इतिवृत्त की प्रामाणिकता

--कुमारी सुभाष गुप्त

हिन्दी साहित्य गगन के प्रकाशमय नक्षत्रों में गोस्वामी तुलसीदास जी का स्थान अग्रगण्य है। परन्तु इनका जीवन-वृत्त अपेक्षाकृत अन्धकारमय है। इसका कारण यह हो सकता है कि इन्हें अपने इष्टदेव के सम्मुख आत्मप्रदर्शन इष्ट नहीं था। इनके जीवन वृत्त के सम्बन्ध में अनेक पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वानों ने अनुसन्धान किये। पाश्चात्य विद्वानों ने इनके जीवन वृत्त पर जो प्राथमिक अनुसन्धान किया वह प्रशंसनीय है। इस दिशा में सर्वप्रथम प्रकाश डालने वाले एच० एच० विलसन थे। इनके पश्चात् गार्सा-द-तासी ने भी इस दिशा में कार्य किया परन्तु इन्होंने विलसन का ही अनुकरण किया। एफ० एस० ग्राउज ने भी इस दिशा में कार्य किया परन्तु इन्होने विलसन की कतिपय त्रुटियों का ही उल्लेख किया। इस सन्दर्भ में सबसे महत्वपूर्ण कार्य सर जार्ज आथर्र ग्रियर्सन का है। रेवरेंड ई० ग्रीव्ज, डा० विंसेट स्मिथ, रेवरेंड एफ० ई० के और क्रिसैन कीने आदि सभी ने उन्हीं का अनुकरण किया है। अनेक भारतीयों ने भी अपने जीवन का बहुत समय गोस्वामी जी के जीवन वृत्त और ग्रन्थों के अध्ययन में व्यतीत किया है। जहां तक गोस्वामी जी के ग्रन्थों के अध्ययन तथा समालोचना का सम्बन्ध है वहां तक उनका कार्य अत्यन्त उपादेय है किन्तु गोस्वामी जी के जीवन वृत्त पर उनका अनुसन्धान इतना उपादेय नहीं है। इसका कारण नवानुसन्धान के प्रति उपेक्षा ही हो सकता है। जिन भारतीय विद्वानों ने इस ओर अपनी कलम उठाई वे हैं— मिश्रबन्धु, डा० श्यामसुन्दर दास, पं० रामचन्द्र शुक्ल, बाबू शिवनन्दन सहाय, श्री रामदास गौड़, ला० सीताराम, श्री सद्गुरुशरण अवस्थी, डा० माताप्रसाद गुप्त, पं० चन्द्रबली पाण्डे, रामदत्त भारद्वाज आदि।

तुलसी जीवन वृत के आधार स्रोत:—

इनके जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में अन्त: साक्ष्य और बाह्य साक्ष्य दो प्रकार के प्रमाण उपलब्ध हैं। बाह्य साक्ष्य के अन्तर्गत तुलसी चरित, मूल गोसाईं चरित, घट-रामायण, गोसाईं चरित, गौतम चन्द्रिका, दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता, नाभादास कृत भक्तमाल, बाबा वेणीमाधवदास कृत भक्तमाल की टीका, तुलसी प्रकास आदि। इनमें से तुलसी चरित, मूल गोसाईं चरित, गौतम चन्द्रिका, गोसाईं चरित्र, तुलसी प्रकास, घटरामायण आदि की प्रामाणिकता संदिग्ध है। अन्त: साक्ष्य में गोस्वामी जी के अपने ग्रन्थ आते हैं। इनके जन्म-स्थान, जन्म संवत् आदि का विवेचन करने से पहले इनके जीवन वृत्त से सम्बन्धित संदिग्ध ग्रन्थों के विषय में विचार कर लें।

(१) तुलसी चरितः—इसे बाबू इन्द्रदेव नारायण ने गोस्वामी जी के एक शिष्य महात्मा रघुवरदास कृत माना है। मिश्र बन्धु इसके विषय में लिखते हैं कि "हम 'तुलसी चरित' को प्रमाण नहीं मानते हैं क्योंकि इस ग्रन्थ को सिवा एक-आध सज्जन के किसी ने नहीं देखा है और उन महाशय ने हमसे कई बार वादा करने पर भी उस ग्रन्थ को दिखाने में कोई तत्परता नहीं की।" पं० रामचन्द्र शुक्ल भी इसी का उल्लेख 'तुलसी ग्रन्थावली' की प्रस्तावना में करते हैं कि "इस पुस्तक को और किसी ने नहीं देखा है।" ऐसा ही विचार डॉ० श्यामसुन्दरदास और डा० पीताम्बर दास का है। रामदत्त भारद्वाज के अनुसार "तुलसी चरित जैसा भी उपलब्ध है वह अपने वास्तविक रूप का द्योतक है। न तो उसकी भाषा परिमार्जित है और न ही उसकी बातें ही इतिहास के अनुकूल है। उसकी प्रामाणिकता तो स्वयं सिद्ध है।"

अतः इस ग्रन्थ को प्रामाणिक कहना न्यायसंगत नहीं, क्योंकि न तो यह पूरा प्रकाशित हुआ है और न ही इसमें वर्णित बातें ही न्यायसंगत हैं।

(२) मूल गोसाईं चरितः—यह पुस्तक 'वेणीमाधव प्रसाद' जी द्वारा रचित मानी जाती है। इसमें वर्णित घटनाएं तथा तिथियां इतिहास से मेल नहीं खातीं। श्रीधर पाठक जी के अनुसार "हमारी समझ में वेणीमाधव दास जी के मूल गोसाईं चरित में दी हुई सामग्री गोस्वामी जी के सविशेष जीवन-चरित के लिए अधिकांश प्रामाणिक और उपयोगी है। केवल जन्म संवत् की और जन्म संवत् से रामगीतावली के संकलन के पूर्व तक जो घटना काल दिये हैं उनकी सत्यता संदिग्ध प्रतीत होती है।" पं० शुकदेव विहारी मिश्र के अनुसार "इसकी साक्षी अनेकानेक अंशों में इतनी असम्भव और भ्रष्ट है कि इसके किसी अंश पर भी विश्वास करना बड़े ही श्रद्धालु पुरुष का काम है।" पं० मायाशंकर याज्ञिक, पं० रामनरेश त्रिपाठी आदि का भी यही मत है। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी-साहित्य के इतिहास में इस विषय पर विचार किया है। उनका कथन है कि—"अयोध्या में एक ऐसा निपुण दल है जो समय-समय पर पुस्तक प्रकट करता रहता है।" अतः यह अप्रामाणिक है। रामदत्त भारद्वाज के अनुसार—"मूल गोसाईं चरित परीक्षा की कसौटी पर ठीक नहीं उतरा है। जिस समय में यह रचा हुआ बताया जाता है उससे भी कहीं पीछे का है। चमत्कारों, असम्भव घटनाओं और इतिहास-व्यतिक्रमों ने इसकी मौलिकता का अपहरण कर लिया है।" उपर्युक्त विश्लेषण से यही निष्कर्ष निकलता है कि इसमें वर्णित घटनाएं इतिहास की कसौटी पर पूरी नहीं उतरती तथा साथ ही कुछ वर्णन असंगत प्रतीत होते हैं। भाषा की दृष्टि से भी यह प्राचीन नहीं है। अतः इसकी प्रामाणिकता संदिग्ध है।

(३) घट-रामायणः—यह हाथरस वाले तुलसी साहब की कृति बताई जाती है। श्री लक्ष्मी नारायण सिंह जी 'सुधांशु' के अनुसार "किसी तुक्कड़ ने इसकी रचना कर इसे तुलसीदास जी के पवित्र नाम से प्रकाशित किया है। यह पुस्तक संतमत की कट्टर समर्थक है। सारी पुस्तक दोहे, चौपाई आदि में वर्णित है पर इसमें रामचरित मानस की तरह न सरसता है, न सरलता और न

अर्थगाम्भीर्य। हमारी समझ में यह पुस्तक गोस्वामी के पवित्र नाम में कलंक लगाने वाली है।" डॉ० माता प्रसाद गुप्त के अनुसार काशी आगमन की तिथि ज्योतिष गणना के अनुसार ठीक नहीं उतरती और इसमें अनेक ऐतिहासिक व्यतिक्रम भी हैं जिससे इसके साक्ष्य का महत्त्व एकदम कम हो जाता है। रामदत्त भारद्वाज, डॉ० पीताम्बरदास, श्री परशुराम चतुर्वेदी आदि ने घट-रामायण के जीवन वृत्त सम्बन्धी परिशिष्ट को प्रक्षेप माना है। अतः इसके भी प्रामाणिक होने में सन्देह है।

(४) गोसाईं चरितः—"भवानीदास कृत 'गोसाईं चरित' की यह विशेषता है कि उसमें गोस्वामी तुलसीदास जी की यात्राओं तथा प्रसंगों के वर्णन का बाहुल्य है।" डा० माता प्रसाद गुप्त के अनुसार "चरित्र भर में कहीं भी किसी तिथि का उल्लेख नहीं हुआ जिस कारण इसकी ऐतिहासिक घटनाओं का परीक्षण नहीं हो सकता।" अतः इसे भी हम प्रामाणिक नहीं कह सकते।

(५) गौतम-चन्द्रिकाः—रामदत्त व्यास के अनुसार गौतम चन्द्रिका के 'तुलसी विवरण' की उपलब्धि सन्देहातीत नहीं हैं—उन्होंने संवत्, पक्ष और तिथि का प्रयोग केवल एक बार किया है जिसमें वार का भी वार्गन किया है। बुद्धिमता की दूसरी बात है कि उन्होंने घटनाओं के पूर्वा पर सम्बन्ध के उत्तरदायित्व का भार ही अपने सिर से हटा दिया। फिर भी उन्होंने यह लिख ही दिया कि सं० १६६८ के पश्चात् रुद्रबीसी मीन की सनीचरी का अवसान हुआ। यह प्रमाद-राहु 'चन्द्रिका' को ग्रस कर आत्मसात् कर लेता है।" इसमें तुलसी सम्बन्धी अनेक बातें दी हैं। इसके अनुसार गोस्वामी जी की मृत्यु श्रावण कृष्णा तृतीया शनिवार को संवत् १६८० में हुई। इस तिथि में वार का उल्लेख नहीं हुआ। साथ ही बहुत सी ऐसी बातें हैं जो प्रामाणिक सिद्ध नहीं होती। अतः इसकी प्रामाणिकता भी संदिग्ध है।

(६) तुलसी-प्रकासः—यह ग्रन्थ अविनाश राय नामक कवि द्वारा रचित है। इसमें इन्होंने चौबीस तिथियां शक संवत् में दी हैं। इनमें से तीन में तिथि वार नहीं दिये हैं अतः इनको सत्य सिद्ध करने का प्रश्न ही नहीं उठता। शेष भी अधिकतर सत्य सिद्ध नहीं होतीं। यह गोस्वामी जी का जन्म स्थान सोरों के योग मार्ग मुहल्ले में मानते हैं। परन्तु सोरों सामग्री के अनुसार तो तुलसीदास जी का जन्म स्थान रामपुर नामक ग्राम था जो कि सोरों से लगभग दो मील दूर है। वास्तव में इसके कुछ अंश प्राचीन प्रतीत होते हैं परन्तु पुस्तक में मिलावट अवश्य है। अतः इसको भी प्रामाणिक नहीं माना जा सकता।

सूकर-खेतः—तुलसीदास जी के इतिवृत्त की चर्चा से पहले सूकर-खेत के विषय में जान लेना समीचीन प्रतीत होता है। ला० सीताराम जी ने "Sclections from Hindi Literature" की तृतीय पुस्तक 'तुलसीदास' नामक ग्रन्थ में उल्लेख किया है कि "तुलसीदास जी साधुओं के दल में सम्मिलित होकर सूकर खेत अर्थात् वराह क्षेत्र चले गये और यह खेत एटा जिले का सोरों नहीं है जैसा कि ग्राउज महोदय ने माना है, किन्तु यह गोंडा जिले में सरयू-घाघरा के संगम पर स्थित है।

शुक्ल जी अपने हिन्दी-साहित्य के इतिहास में लिखते हैं—'मैं पुनि निज गुरु सन सुनि, कथा सो सूकर खेत' को लेकर कुछ लोग एटा जिले के सोरों नामक स्थान तक सीधे पश्चिम दौड़े हैं—बहुत दिनों पीछे उसी इशारे पर दौड़ लगी और अनेक कल्पित प्रमाण सोरों को जन्म स्थान सिद्ध करने के लिए तैयार किये गये। सारे उपद्रव की जड़ है सूकर खेत, जो भ्रम से सोरों समझ लिया गया। सूकर क्षेत्र गोंडा जिले में सरयू के किनारे एक पवित्र तीर्थ है। यहां आसपास के कई जिलों के लोग स्नान करने जाते हैं और मेला लगता है।

डॉ० भगवती प्रसाद सिंह ने जून, १९४३ की सरस्वती में सूकर खेत' नामक लेख में सरयू-घाघरा संगमस्थ 'पसका' ग्राम को सूकर खेत सिद्ध करने के लिए 'पसका' शब्द की व्युत्पत्ति की है कि पसका=पशुकः=पशु इव इति=कुत्सित: पशु किन्तु व्युत्पत्ति इस प्रकार भी तो हो सकती है—पसका=पास+का अर्थात् गोंडा वालों के लिए पासका वराह तीर्थ क्योंकि सोरों वाला दूर पड़ता है। परन्तु इस प्रकार की व्युत्पत्तियां तो प्रामाणिक नहीं मानी जा सकती।

एटा जिले में सूकर खेत आज भी सोरों नाम से जाना जाता है। सूकर खेत की स्थिति सम्बन्धी प्रमाण वराह-पुराण, ब्रह्म पुराण संहिता, गर्ग संहिता, पृथ्वीराज रासो आदि में उपलब्ध हैं।

पुराणों के अनुसार सूकर खेत की स्थिति भगीरथी गंगा के तट पर बताई जाती है। गर्ग संहिता में उसे कौशाम्बी, रामतीर्थ और कर्ण क्षेत्र के निकट बताया है। श्री विष्णुस्वामी चरणामृत में वह स्थान सम्भल और वटेश्वर के बीच तथा कन्नौज, कम्पिला और मथुरा के निकट बतलाया है। १०९५ के शक वाले शिलालेख से विदित होता है कि यह बिलराम और काली नदी के पास है। कम्पिला निवासी तोषनिधि ने "दीनविंशगत" में सूकर खेत को कम्पिलापुरी के निकट माना है।

सूकर खेत का विस्तार सोरों से अतिरंजी, एटा, मथुरा और स्यात् अलीगढ़ तक है। अलीगढ़ का प्राचीन नाम कोइल संस्कृत के 'कोल' शब्द का स्मरण दिलाता है जिसका अर्थ वराह है। सूकर क्षेत्र का विस्तार कहते हैं: पूर्व में गणेशपुर (सहावर), पश्चिम में परमोरा (बखारा), दक्षिण में कासगंज और उत्तर में सहसवान तक है। किन्तु आजकल उसका विकास सोरों कस्बे तक ही है। गोस्वामी जी की जन्मभूमि रामपुर अर्थात् (श्यामपुर एवं श्यामसर) वराह जी के मन्दिर से दो मील है, अतः सूकर क्षेत्र के अन्तर्गत है। ऐसा आजकल प्रचलित मत है।

जन्म स्थान:—तुलसीदास जी के जन्म स्थान के विषय में मतभेद है। हाजीपुर, हस्तिनापुर, राजापुर, काशी, अयोध्या सोरों आदि स्थानों का उल्लेख किया जाता है। किन्तु सोरों के रामपुर ग्राम का पक्ष अधिक प्रबल है। फ्रांसिस बुचावन ने काशी को, एच० एच० विल्सन ने चित्रकूट के निकट हाजीपुर को, ग्राउज ने 'भक्त सिन्धु' के अनुसार गोस्वामी जी का जन्म हस्तिनापुर और ग्रियर्सन ने तारी और राजापुर को माना है। ला० सीताराम के अनुसार 'कोई कहता है उनका जन्म राजापुर के पास हस्तिनापुर में हुआ था जिसे अब हस्तनाम कहते हैं।" किन्तु वह स्वयं तारी के पक्ष में थे।

राजापुरः—राजापुर से गोस्वामी तुलसीदास जी का घनिष्ठ सम्बन्ध प्रदर्शित करने के लिए निम्नलिखित सामग्री का उल्लेख किया जा सकता है।

१. तुलसी चरित, मूल गोसाईं चरित, घट-रामायण परिशिष्ट।
२. अयोध्या-काण्ड का तापस प्रकरण।
३. अयोध्या-काण्ड की प्राचीन हस्तलिखित प्रति।
४. शासकीय विवरण।
५. मन्दिर और प्रतिमाएं।
६. माफी की दो सनदें।
७. शर्त वाजिबुल अर्ज।
८. जनश्रुति।

परन्तु इन सबसे राजापुर की सामग्री इतनी स्पष्ट है कि गोस्वामी तुलसीदास सोरों के निवासी थे इसमें सन्देह नहीं रहता। उनका जन्म स्थान सोरों या सोरों के आसपास कोई स्थान था। विरक्त होने पर राजापुर की उन्होंने स्थापना की, जहां आज भी उनके शिष्य निवास करते हैं और कुछ माफी का उपभोग तथा रामचरित मानस के अयोध्या-काण्ड की अति प्राचीन प्रति की संरक्षा करते हैं।

काशीः—फ्रांसिस बुचावन ने तुलसीदास को काशी का सारस्वत ब्राह्मण लिखा है। श्री रजनीकान्त शास्त्री के मत से भी गोस्वामी जी की जन्मभूमि काशी थी। गोस्वामी जी का काशी से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा, यह निर्विवाद है। जैसा कि 'रामचरित मानस' और 'विनय-पत्रिका' से स्पष्ट है कि उनका वार्द्धक्य वहां बीता। तुलसी घाट असी गंगा जी के संगम पर स्थित है। इस घाट के सन्निकट एक पुराना भवन है जिसकी एक कोठरी में हनुमान जी की प्राचीन मूर्ति है। यहां लकड़ी का एक खण्ड भी है जो उस नौका का अवशेष कहा जाता है जिससे गोस्वामी जी गंगा पार जाया करते थे। एक जोड़ी खड़ाऊं तथा एक चित्र भी विद्यमान है जिसे गोस्वामी जी का माना जाता है। इसके अतिरिक्त काशी में हस्तलिखित सामग्री भी है। इस सबसे यह कहा जा सकता है कि यद्यपि काशी में हस्तलिखित सामग्री भी है तथापि काशी गोस्वामी जी की जन्मभूमि नहीं है। हाँ ! उनके निवास और मोक्ष की भूमि होने के कारण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अवश्य है।

अयोध्याः—पं० चन्द्रबली पाण्डे ने इनका जन्म स्थान अयोध्या इंगित किया है। उन्होंने प्रमाणों का विभाजन द्विविध किया है—अन्तः साक्ष्य और बाह्य साक्ष्य। बाह्य साक्ष्य के अन्तर्गत तुलसी चौरा, मोहन साईं का ख्याल, भवानीदास का लेख है। अन्तः साक्ष्य का आधार तुलसीदास जी के रामचरित मानस कवितावली और गीतावली हैं। इन्होंने गोस्वामी जी का जन्म स्थान रामपुर माना है तथा कहा है कि वहीं इनके पूर्वज रहते थे। किन्तु दोनों रामपुर भिन्न स्थान हैं। भगवान राम का जन्म स्थान रामपुर अर्थात् अयोध्या है और गोस्वामी का जन्म स्थान रामपुर

ग्राम हैं। इन्होंने अपनी कल्पना से सोरों सामग्री को और अधिक स्पष्टता और पुष्टता प्राप्त कराई है।

तारी : (हुलसी की जन्म स्थली):—कविराज अविनाश राय ने अपना जन्म स्थल तारी बताया है कि इसी ग्राम में अयोध्यानाथ नामक ज्योतिषी रहते थे जिनकी एक ही सन्तान 'हुलसी' कन्या थी। विवाह-योग्य होने पर उन्होंने पास ही सूकर खेत के रामपुर में आत्माराम सुकुल के साथ अपनी पुत्री का विधिपूर्वक विवाह किया। विवाह के पश्चात् उन्होंने पं० आत्माराम सुकुल को बुलाकर अपना सब कुछ सौंप कर स्वर्ग-लोक को गमन किया। पं० आत्माराम एक वर्ष तारी में रहे, तत्पश्चात् वह हुलसी के साथ अपने ग्राम रामपुर में जा बसे। परन्तु उक्त तारी गोस्वामी जी की जन्म स्थली नहीं हुलसी की थी।

रामपुरः—गोस्वामी जी ने रामपुर शब्द का प्रयोग, अयोध्या के लिये, विनय-पत्रिका और रामचरित मानस में एक दो बार किया है। इससे यह प्रतीत होता है कि गोस्वामी जी सूकर क्षेत्र में उत्पन्न हुए। सूकर क्षेत्र का क्षेत्र पंचयोजन चारों ओर है। इस प्रकार रामपुर ग्राम जो सोरों से डेढ़ मील दूर है उसके अन्तर्गत है। तुलसी प्रकास के अनुसार गोस्वामी जी की माता हुलसी लगभग पांच मील की दूरी पर तारी ग्राम की थी और उनके पिता आत्माराम दुबे एक वर्ष तारी में रहे भी। जनश्रुति के अनुसार तुलसीदास जी की गर्भ स्थिति तारी में हुई थी।

डॉ० भागीरथ मिश्र का निष्कर्ष ठीक ही है कि गोस्वामी जी की "जन्मभूमि न तो राजापुर ही है और न सोरों ही, वरन् सोरों या सूकर क्षेत्र के पास कोई स्थान इनकी जन्मभूमि हो सकती है।" अतः वह स्थान सोरों के निकट रामपुर ही प्रतीत होता है और गोस्वामी जी की यही जन्मभूमि है।

जन्म संवत्:—इनके जन्म संवत् के विषय में भी पर्याप्त मतभेद है।

१५५४:—मूल गोसाई चरित के कर्ता वेणीमाधवदास गोस्वामी जी जन्म-तिथि के विषय में यह लिखते हैं—

पन्द्रह सों चउवन विषे कालिन्दी के तीर।
सावन शुक्ला **सप्तमी** तुलसी धरेउ शरीर।।

इस तिथि के साथ वार का उल्लेख नहीं हुआ है अतः इसकी प्रामाणिकता के विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। यदि १५५४ ठीक मान ली जाये तो गोस्वामी जी की आयु १२६ वर्ष होती है। उन्होंने रामचरित मानस १६३१ वि० में सत्तहर वर्ष की अवस्था में लिखा। यह पं० रामनरेश त्रिपाठी और डॉ० माता प्रसाद गुप्त को असम्भव सा लगता है। परन्तु इस विषय में इतना तो कहा ही जा सकता है कि इतनी दीर्घायु बहुत कम लोगों की होती है। परन्तु जब १५५४ वि० वाली तिथि ही अशुद्ध है तो यह धारणा भ्रान्त सिद्ध हो जाती है।

१५६०:—स्व० जगमोहन वर्मा ने गोस्वामी जी का जन्म संवत् १५६० माना है। उनके मत का आधार राममुक्तावली की निम्न पंक्ति है—

"पवन तनय मो सन कह्यो पांच बीस अरु बीस"

इसको जन्म संवत् मान लेने से गोस्वामी जी आयु १२० वर्ष की होती है। "पांच बीस अरु बीस" के दो अर्थ निकलते हैं। एक ५+२०+२०=४५ हो सकता है। यदि इसका अर्थ २०×५+२०=१२० किया जाये तो यह पंक्ति गोस्वामी जी की आयु १२० वर्ष के पश्चात् लिखी गई होगी। यह जन्म संवत् तो अनुमान के बल पर है। अतः अनुमान पर आधारित होने के कारण यह संवत् प्रामाणिक नहीं माना जा सकता।

१५८३:—शिवसिंह सेंगर ने गोस्वामी जी का जन्म संवत् १५८३ माना है। उन्होंने 'शिवसिंह सरोज' में लिखा है कि "यह महाराज १५८३ के लगभग उत्पन्न हुए थे।" परन्तु १५८३ का उल्लेख किसी जनश्रुति अथवा अनुमान के आधार पर है जिसकी पुष्टि किसी अन्य प्रमाण से नहीं होती।

१५६८:– अविनाशराय के तुलसी प्रकास में इस प्रकार लिखा है—

राम राम सागर मही एक सेत सावन मास।
रवि तिथि भृगु दिन दुतिय पद नषत विसाषा वास॥

इसके अनुसार तुलसीदास जी का जन्म श्रावण शुक्ला सप्तमी शुक्रवार शक संवत् १४३३ में हुआ। जैसा कि इस पुस्तक के विषय में कहा जाता है कि यह सक्षेपक है इसकी कुछ तिथियां अशुद्ध भी हैं अतः प्रमाण सर्वथा निर्भ्रान्त नहीं कहा जा सकता। इसके मान लेने पर इनकी आयु ११२ वर्ष बैठती है अतः रामचरित मानस त्रेसठ वर्ष की अवस्था में लिखा गया होगा। रामदत्त भारद्वाज के अनुसार "यद्यपि तुलसी प्रकास जिसके आधार पर यह संवत् माना जाये सर्वथा स्वीकृत नहीं—तथापि मैंने ऊटकमण्ड के सरकारी एपिग्रैफिस्ट से विदित किया कि श्रावण शुक्ला सप्तमी शुक्रवार १५६८ वि० को ग्रहों की स्थिति इस प्रकार थी—जन्म के समय विशाखा नक्षत्र का द्वितीय चरण था। अतएव उक्त आधार पर तीन जन्म-पत्रियां सम्भव हैं। जिनमें से तीसरी तुलसी के जीवन कीं घटनाओं का समर्थन करती है—इसके अतिरिक्त एक विचित्र संयोग का उल्लेख करने के लिये मुझे आन्तरिक प्रेरणा हो रही है। यदि तुलसीदास जी का जन्म संवत् वास्तव में १५६३ वि० था तो निम्न पंक्ति उन्हीं के जीवन पर यथार्थ घटती भी है।"

जगतें रहु छत्तीस ह्वै रामचरण छहतीन।
तुलसी देखु विचारी हिय है यह मतौ प्रवीण॥

सोरों सामग्री के अनुसार गोस्वामी जी ने सं० १६०४ में गृह-त्याग किया, तब वह ३६ वर्ष के थे। जब उन्होंने अयोध्या में भगवान राम के चरणों में बैठकर रामचरित मानस का प्रारम्भ किया तो वह ६३ वर्ष के थे।

१६००:—विल्सन के अनुसार तुलसीदास ने ३१ वर्ष की अवस्था में रामचरित मानस लिखना प्रारम्भ किया। अतः इनका जन्म (१६३१—३२)=१६०० वि० होना चाहिये। गौतम-चन्द्रिका में भी यह उपलब्ध होता है। परन्तु डॉ० माता प्रसाद गुप्त के अनुसार "इस अवस्था में इतने विद्वत्तापूर्ण गहन ग्रन्थ का प्रणयन असम्भव जान पड़ता है।" परन्तु इस विषय में यही कहा जा सकता है कि महापुरुषों के विषय में ऐसा असम्भव नहीं। रामदत्त भारद्वाज को यह संवत् ग्राह्य नहीं क्योंकि अन्य प्रमाणों से इसकी संगति नहीं बैठती। सोरों सामग्री के अनुसार तुलसीदास जी १६०४ वि० में सोरों छोड़कर चले गये थे जबकि उनकी पत्नी २७ वर्ष की थी अतएव उसके अनुसार उस संवत् में तुलसीदास को भी कम से कम २७ वर्ष का होना चाहिये। अतः यह भी प्रामाणिक नहीं कहा जा सकता।

१५८९:—मिर्जापुर के रामगुलाम द्विवेदी जनश्रुति के अनुसार तुलसी जी का जन्म १५८९ मानते हैं। ग्रियर्सन ने भी घटरामायण के आधार पर इसकी पुष्टि की है। इस पुस्तक में सात तिथियों का उल्लेख है। चार में वार का उल्लेख नहीं अतः उनका परीक्षण नहीं हो सकता है। डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने सबका स्वयं परीक्षण किया है परन्तु सिवाय जन्म तिथि के अन्य दोनों तिथियां भूत, वर्तमान किसी भी प्रणाली से शुद्ध नहीं। श्री चन्द्रबली पाण्डे का झुकाव १५८९ के पक्ष में है। परन्तु उन्हें स्वयं भी अपने पर विश्वास नहीं था जैसा उन्होंने कहा है—"कोई चाहे तो १५८३ को भी तुलसीदास की जन्म तिथि मान सकता है अन्यथा डॉ० माताप्रसाद गुप्त को मान्य है सं० १५८९ ही।"

ऊपरलिखित सभी जन्म संवतों को आज के वैज्ञानिक युग में परखने पर श्री रामदत्त भारद्वाज का १५६८ ही अधिक उपयुक्त जान पड़ता है।

माता-पितादिः—तुलसीदास जी के माता-पिता तथा वैवाहिक जीवन के विषय में भी मतभेद है। जनश्रुति के अनुसार इनके पिता आत्माराम दूबे थे। आचार्य शुक्ल तथा और लोग इन्हें सरयू पारीण ब्राह्मण मानते हैं। मिश्रबन्धु इन्हें कान्य-कुब्ज मानते हैं। परन्तु इतना सब होते हुए भी यह निर्विवाद है कि यह ब्राह्मण थे। तुलसीदास जी की माता का नाम हुलसी था। श्री चन्द्रबली पाण्डे ने हुलसी को तुलसी की पत्नी माना है जो निराधार है। अन्तः साक्ष्य, बाह्य साक्ष्य और जनश्रुति सभी के आधार पर तुलसीदास जी की माता का नाम हुलसी था। जनश्रुति के अनुसार यह अभुक्त मूल नक्षत्र में पैदा हुए जिस कारण माता-पिता ने इन्हें त्याग दिया। पांच वर्ष तक मुनिया नाम की दासी ने इनका पालन पोषण किया किन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात् इन्हें नाना प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। विनय-पत्रिका और कवितावली में इसका उल्लेख अनेक स्थलों पर मिलता है।

विवाहः—इनके वैवाहिक जीवन के विषय में भी मतभेद है। जनश्रुति के अनुसार इनका विवाह दीनबन्धु पाठक की पुत्री रत्नावली से हुआ था। उनका तारक नामक एक पुत्र भी हुआ था

जिसकी मृत्यु हो गई थी । पत्नी के प्रति अत्यधिक आसक्ति के कारण रत्नावली से इनको भर्त्सना लाज न आवत आपको दौरे आएहु साथ" भी सुननी पड़ी थी, जिसने इनके जीवन की दिशा ही बदल दी । तुलसी चरित के अनुसार इनके तीन विवाह हुए परन्तु अन्तः साक्ष्य और वाह्य साक्ष्य दोनों के आधार पर इस ग्रन्थ की घटनाएं मेल नहीं खातीं ।

जीवन गाथाः—जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि गोस्वामी जी ब्राह्मण थे ऐसा निर्विवाद है । परन्तु कुछ लोगों ने इन्हें भ्रमवश नीच कुल का लिख दिया है । श्री रजनीकान्त शास्त्री जी गोस्वामी जी को नीच कुल का सिद्ध करने के लिए निम्नलिखित चरण प्रस्तुत करते हैं—

"जायो कुल मंगन वधावो न बजाओ सुनि, भयो परिताप पाप जननी जनक को"

डॉ० माताप्रसाद गुप्त के अनुसार गोस्वामी जी का नाम केवल तुलसी रहा होगा और इस नाम के साथ दास का प्रयोग बाद में हुआ होगा ।

इनका नाम रामबोला भी प्रसिद्ध है वह कैसे पड़ा इसका स्पष्टीकरण "विनय-पत्रिका" में इस प्रकार है—

राम को गुलाम, नाम रामबोला राख्यो राम ।
काम यहै, नाम द्वै हौं कबहूँ कहत हौं ।।
रोटी-लूगा नीके राखै, आगे हू कि वेद भाखै ।
भली ह्वै है तेरा, ताते आनन्द लहत हौं ।।

गोस्वामी जी अपने विषय में कहते हैं कि 'मैं ऐसा असहना अर्थात् अशुद्ध रहा कि मेरे जन्म के समय जब बधाई के बाजे बज रहे थे तो उनको सुनने के तनिक देर पीछे मेरे माता-पिता दोनों ही को मानसिक तथा शारीरिक कष्ट हुआ ।" क्या कष्ट हुआ इस पर उन्होंने प्रकाश नहीं डाला ।

तुलसीदास जी का बचपन कष्टमय रहा । उन्हें अपनी जीविका के लिए भिक्षा तक मांगनी पड़ी । यद्यपि इनके माता-पिता खाते-पीते थे तथापि माता-पिता तथा चाचा की मृत्यु के पश्चात् उनकी आय का कोई स्रोत नहीं रह गया था ।

गोस्वामी जी के गुरु नृसिंह जी थे । सोरों-सामग्री के अनुसार इनकी पाठशाला सूकर-खेत के चक्रतीर्थ में थी और इस पाठशाला में हनुमान जी की मूर्ति भी थी । एक दिन सोरों में गंगा जी के किनारे एक वैश्य कुछ दान कर रहा था और तुलसीदास उस दान करते हुए बनिये को अधीरता से देख रहे थे परन्तु इन्हें मिला कुछ भी नहीं । नृसिंह जी संयोग से वहां उपस्थित थे और तुलसी की दीन-हीन दशा से बड़े प्रभावित हुए और उन्हें घर ले गये । गोस्वामी जी अपने गुरु का स्मरण 'रामचरित मानस' में इस प्रकार करते हैं—

"वंदी गुरु-पद कंज कृपा सिन्धु नर रूप हरि।"

सोरों सामग्री के अनुसार इनका विद्या स्थान सूकर-क्षेत्र और मुख्य पाठ्य-विषय 'रामकथा' था। अविनाशराय जी के अनुसार इन्होंने गानवाद्य की शिक्षा भी प्राप्त की थी। सोरों सामग्री के अनुसार गोस्वामी जी के गुरुदेव हनुमान जी के और राम जी के भक्त थे। गुरु जी के प्रभाव से तुलसीदास जी भी भगवान राम और हनुमान जी के भक्त बन गये। गोस्वामी जी के गुरु स्मार्त वैष्णव थे। वैष्णव वार्ताओं में तुलसीदास जी को रामानन्दी बताया गया है। गोस्वामी जी की रचनाओं अर्थात् अन्तः साक्ष्य से स्पष्ट है कि वह बाल्यकाल से वृद्धावस्था तक स्मार्त वैष्णव रहे। हाँ रामोपासक होने के कारण उन्हें रामानन्दी समझ लिया गया।

गोस्वामी जी ने जीवन का बहुत सा भाग काशी में व्यतीत किया। राम के पक्के भक्त होते हुए भी उन्हें शंकर भगवान में बहुत आस्था और जन्मभूमि-तट-वाहिनी गंगा के प्रति असीम श्रद्धा थी। रामाज्ञा प्रश्न के अनुसार इन्होंने एक स्थान पर किन्हीं गंगाराम जी का उल्लेख किया है। जनश्रुति के अनुसार वह काशी में प्रह्लाद घाट के निवासी और गोस्वामी जी के मित्र थे। इन्होंने कवितावली में काशी की दरिद्रता और महामारी का उल्लेख किया है। इस महामारी का क्या रूप था उल्लेख नहीं है। लोग दरिद्र और दुःखी थे इसका कारण उनका चारित्र्य-दोष था इसलिए भगवान राम और शंकर काशीवासियों के दुःख के प्रति उदासीन रहे, परन्तु गोस्वामी जी ने द्रवित होकर जानकी जी, पार्वती जी तथा हनुमान जी से दुःख निवारण हेतु दोहावली, कवितावली और विनय-पत्रिका के कुछ दोहे रचे तथा प्रार्थना की।

इन्होंने 'विनय-पत्रिका' में अपने सम्बन्ध में लिखा है—

"गोरो तन मुप मार छबि, सुनयन बाहु विलास"

इन सबसे प्रतीत होता है कि तुलसीदास जी का गौरवर्ण तथा सुन्दर शरीर था। ऐसा इनके सभी उपलब्ध चित्रों से भी प्रतीत होता है। गोस्वामी जी प्रकृति से दीनों के प्रति दयालु थे। चूंकि वह अपने बचपन में कष्टों और संकटों का पर्याप्त अनुभव कर चुके थे इसलिए वह भली-भांति जानते थे कि कष्ट कितने दुःखद होते हैं और विपत्ति में सान्त्वना तथा सहानुभूति का क्या महत्त्व होता है। यद्यपि काशी वालों ने इन्हें अनेक प्रकार के कष्ट दिये फिर भी जब काशी में महामारी का प्रकोप हुआ और इन्होंने अपनी आँखों से अनेक व्यक्तियों को मौत के मुख में जाते देखा तो इनका हृदय द्रवित हो गया। वह इतने द्रवित हुए कि इन्होंने इस महामारी की शान्ति के लिए भगवान शंकर की आराधना की। अनेक लोग अपनी-अपनी कामनाएं लेकर आस-पास से ही नहीं दूर-दूर से आते थे और यह उनकी इच्छाओं को पूर्ण करते थे।

इनका स्वभाव बड़ा मृदुल था। ऐसा उनके वर्णनों से आभास मिलता है क्योंकि बालमीकि-रामायण के कटु प्रसंगों का उल्लेख इन्होने छोड़ दिया है। इन्हें अपने माता-पिता गुरु आदि पर अपार श्रद्धा थी। अनेक बार स्पष्ट तथा गुप्त रूप से गुरु नरसिंह, माता हुलसी तथा पिता आत्माराम

के नाम का उल्लेख हुआ है। इन्होंने कौशल्या, सुमित्रा, सीता, अनसूया आदि नारियों की चर्चा बड़े आदरभाव से की है। परन्तु फिर भी इनकी रचनाओं में कहीं-कहीं नारी विरोधी उक्तियां भी मिलती हैं।

इनकी अपने आराध्य में ऐसी एक-निष्ठ भक्ति, ऐसा विश्वास और इतनी अखण्ड आस्था थी कि संसार के इतिहास में ऐसा उदाहरण दुर्लभ है। वह बड़े ही विनयशील, भावुक और आत्म-परीक्षक थे। वह जो कार्य करते थे उसे कर लेने के पश्चात् उसके औचित्य अनौचित्य पर विचार कर लेते थे। वह लोक-व्यवहार से परिचित थे। वह स्पष्टवादी, प्रकृति प्रेमी और आदर्शवादी थे। वह जो विचार कर लेते थे उस पर दृढ़ रहते थे। गृह-त्याग कर देने पर वह पुनः लौट कर नहीं आये यद्यपि उनकी पत्नी ने उनके पास अनेक सन्देश भेजे और भाई-भतीजों ने रामपुर सोरों में पधारने की प्रार्थना की। अधिकारियों के तथा सम्राट शाहजहाँ के आग्रह पर भी वह चमत्कार दिखाने को तैयार नहीं हुए।

दीर्घकालीन जीवन के अनुभव, पर्यटन और सत्संग के कारण गोस्वामी जी बहुश्रुत थे। उनका अध्ययन विशाल था। उनकी सूक्तियां श्रुति-स्मृति पर आधारित थीं। उनके दर्शन की गूढ़ता से प्रकट है कि वह तत्कालीन आचार्यों के मतों से अवगत थे। रामचरित मानस के आरम्भिक श्लोक में उन्होंने स्पष्ट कहा है कि मेरी रचना अनेक पुराणों, आगम, निगम तथा अन्य ग्रन्थों पर आधारित है। अपनी प्रतिभा के बल पर हीं इन्होंने संसार को वह महान् साहित्य दिया जिसका कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं।

मृत्युः—इनकी मृत्यु वि० १६८० में हुई, इस विषय में किसी को भी कोई सन्देह नहीं है। हाँ श्रावण के किस पक्ष में और किस तिथि को इस विषय में मतभेद अवश्य हैं। कुछ लोग "श्रावण श्यामा तीज शनि" मानते हैं और कुछ "श्रावण शुक्ला सप्तमी"। पहली तिथि परीक्षण पर ठीक नहीं उतरती, दूसरी तिथि का परीक्षण सम्भव नहीं क्योंकि 'वार' का इसमें उल्लेख नहीं। ऐसी जनश्रुति है कि गोस्वामी जी की जो जन्म-तिथि थी वही मृत्यु तिथि भी थी। बाबा वेणीमाधवदास और अविनाशराय के अनुसार जन्म तिथि "श्रावण शुक्ला सप्तमी" है। श्री रामदत्त भारद्वाज लिखते हैं कि "एक ओर जनश्रुति की रक्षा और दूसरी ओर टोडर कुटुम्ब की परम्परा। व्यक्ति तो विस्मृति आदि के कारण इतने लम्बे काल में धोखा खा सकता है पर जनश्रुति तो बहुत लोगों की जिह्वा पर विराजती रहती है। अतएव मेरा झुकाव "श्रावण शुक्ला सप्तमी" की ओर है।" अतः श्रावण शुक्ला ही अधिक समीचीन जान पड़ती है।

गोस्वामी जी का जीवन इतना व्यापक, प्रतिभाशाली तथा सर्वतोमुखी था कि अनेक पाश्चात्य और भारतीय विद्वानों ने इनके इतिवृत्त-वर्णन में अन्तः साक्ष्य और बाह्य साक्ष्य के आधार पर अपने-अपने मत प्रकट किए हैं। इनके जीवन का कोई पहलू नहीं जो विवादग्रस्त न हो क्योंकि जिस

दृष्टिकोण को लेकर आज हम उनके ग्रन्थों की समीक्षा करते हैं वह भ्रान्तिपूर्ण हैं। भारतीय आदर्श के अनुसार इनका उद्देश्य तिथियों या घटनावलियों का वर्णन करना नहीं था अपितु जीवन के शाश्वत चिरन्तन सिद्धान्तों को अपने जीवन में घटाना था। यह सिद्धान्त आदर्शों के प्रतीक हैं। भारतीय कर्म सिद्धान्त के अनुसार इनकी भी उसमें आस्था थी। इन्होंने भी अपने काव्य का विषय लौकिक विषयों की अपेक्षा पारलौकिक ही बनाना अधिक उपयुक्त समझा क्योंकि इन अलौकिक व्यक्तियों को जीवन-वृत्त में मानव जाति के चिरन्तन आदर्शों का प्रतिबिम्ब संचित था। इन्होंने अपने काव्यों में सांस्कृतिक तथ्य ही प्रस्तुत किए। कथा-प्रसंग की दृष्टि से तुलसीदास जी के जीवन-वृत्त का अध्ययन ठीक-ठीक नहीं हो सकता क्योंकि इनकी दृष्टि में कथा सदा गौण रही है और इनका ध्यान नित्य राम में ही रमा रहा है। तुलसीदास जी का ग्रन्थ 'रामचरित मानस' जो उनका सर्वस्व है, एक अद्भुत काव्य-ग्रन्थ है। प्रामाणिक बाह्य साक्ष्य के अभाव में हमें गोस्वामी जी के जीवन-वृत्त के विषय में अन्तः साक्ष्यों पर ही अधिक निर्भर रहना पड़ता है तथा साथ ही कुछ जनश्रुति पर भी विश्वास करना पड़ता है।

उक्ति साहित्य और तुलसीदास

—श्री प्रिंस मोहन

"सुन्दर उक्ति ही काव्य है", किन्तु उक्तिगत सौन्दर्य के मूलस्रोतों के विषय में काव्य-चिन्तक कभी एकमत नहीं रहे। क्योंकि प्रत्येक सौन्दर्य-ग्राहक की निजी रुचियां हुआ करती हैं कोई कुछ भी क्यों न कहे यह सर्वमान्य सत्य है कि उक्ति सौन्दर्य का सम्बन्ध मूलतः कवि की अनुभूति, जिसे भावपक्ष भी कहते हैं, से होता है। अनुभूतिशून्य काव्य में जितने भी सौन्दर्य साधनों का प्रयोग और उपयोग किया जाये वे लक्ष्य-ग्राही नहीं हो सकते।

वाणी की दिव्य विभूति के रूप में जो मौलिक साहित्यिक सर्जना होती है उसका मूलमन्त्र है 'प्रतिभा'। इस दैवीशक्ति का प्रभाव उन विभिन्न उपादानों पर पड़ता है जिनके संयोजन से काव्य-रचना होती है। काव्य का मुख्य उपादान हैं 'विषय'। विषय के निर्वाचन और निर्वाह में यदि प्रतिभा का पूरा-पूरा योग मिल जाये तो भूत-भविष्य तथा वर्तमान के सभी विषय 'हस्तामलकवत' अतीव सुस्पष्ट और सजीव हो उठते हैं। प्रतिभा भूत के गहन वन के भीतर घुसकर उसके अन्तःकरण में विराजमान सभी सुन्दरताओं की भांकी पा लेती है। एक ओर वह कवि के मानस को परितृप्त करके उसे प्रेरणा प्रदान करती है तो दूसरी ओर सहृदय श्रोता अथवा पाठक को अनुरजित करती है। जीवन और जगत के अन्तराल में से अनुरंजनकारी सुन्दरताओं को बीन बटोरकर प्रतिभा इस रूप में सजा देती है कि उस सृष्टि से मानव को लोकोत्तर आनन्द की प्राप्ति होती है। तुलसी की साहित्यिक पूर्णता का मुख्य कारण यही प्रतिभा है। युगधर्म के अनुरूप विषय को निर्वाचन करने में उनकी प्रतिभा ने बड़ा काम दिया है। जिस समय देश मुगलों की शक्ति को पूर्णरूप से स्वीकार कर बैठा था उस समय राष्ट्र के भीतर आत्म-गौरव की भावना को जगाने के लिये तुलसी ने उद्दीपन विभाव के रूप में भारतीय इतिहास के उन प्रकाण्ड दृश्यों और व्यापारों की ओर देशवासियों का ध्यान आकर्षित किया, जिनके अनुकथन मात्र से उत्साह ग्रहण किया जा सकता हैं। तुलसी के राम भारतीय गौरव, शक्ति, उत्साह और पराक्रम के प्रतीक हैं।

तुलसी उक्तिसहित्य हिन्दी की अनुपम निधि है जो एक समृद्ध संस्कृत परम्परा का अनुजीवी है।

संस्कृत के सुभाषित संग्रहों के आधार पर हम कह सकते हैं कि तुलसी काव्य में सूक्तियां अथवा उक्तियों का प्रयोग कोई अभिनव कार्य नहीं था। सबसे प्राचीन संस्कृत सूक्ति-ग्रन्थ 'कविन्द्ररस समुच्चय' (११०० ई०) है। दूसरा सुभाषित ग्रंथ श्रीधरदास कृत 'सदुक्तिकर्णामृत (१२०० ई०) है। सूक्ति साहित्य का तीसरा ग्रंथ जल्हण-कृत 'सूक्ति मुक्तावली' (१३०० ई०) है। चौथा ग्रंथ 'शार्गंधरपद्धति' (१३६३ ई०) है। पाँचवा वल्लभदेव की 'सुभाषितावली' (१५०० ई०) है। इसके अतिरिक्त रूप गोस्वामी कृत पद्यावली, लक्ष्मणभट्ट की 'पद्यरचना', जीवानन्द विद्यासागर कृत 'काव्य संग्रह' हैं। निर्णयसागर प्रेस से प्रकाशित 'सुभाषितरत्नभाण्डागार' तथा पूर्णचन्द्र देव का 'उद्भटसागर' आदि सुप्रसिद्ध ग्रंथ हैं।

संस्कृत में लोकोक्ति शब्द का प्रयोग आधुनिक अर्थ में नहीं होता। 'सुभाषित' का प्रयोग इसी अर्थ में होता है, परन्सु सुभाषित का अर्थ बहुत व्यापक है। इसमें सभी सुन्दर उक्तियों के लिये स्थान है। लोकोक्ति भी इसी सुभाषित के अन्तर्गत आ जाती है, परन्तु सभी सुभाषित लोकोक्तियां नहीं होते। लोकोक्ति बनने के लिये उन्हें लोकमानस तक पहुंचना पड़ता है, जब तक लोग उन्हें स्वीकार नहीं कर लेते तब तक वह लोकोक्ति के आवरण को नहीं पहन सकतीं। कहावतें अनुभव की दुहिता हैं, उनमें सार्वदेशीय, सार्वकालीन सत्य छिपा रहता है। एक भाषा की कहावत दूसरी भाषा में भी दिखाई पड़ सकती है चाहे उनमें अभिव्यजंना में भिन्नता भले ही हो।

कहावत के सार्वकालीन और सार्वदेशीय प्रभाव को देखकर ही सम्भवतः इसे नीति-साहित्य का एक अंग माना गया है। पंचतन्त्र की कथाओं में नीति सम्बन्धी कई वाक्य मिलते हैं, जिनको कहावतें ही कहा जा सकता है। बाईबल, उपनिषदों, जातक कथाओं एवं इतर प्राकृत तथा संस्कृत के ग्रथों में जो नीति के भण्डार भरे हैं वे कहावतों के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं। संस्कृत में प्रचलित कई सुभाषित भारत की भाषाओं में कहावतों के रूप में ही प्रचलित हैं। पं० राजशेखर का 'हत्य कंकणं कि दप्पणं' हिन्दी में 'हाथ कंगन को आरसी क्या' में प्रयोग हो रहा है।

उक्ति साहित्य के अध्ययन से यह बात ज्ञात होती है कि कहावतों में कल्पना की उड़ान और निरर्थक आडम्बर नहीं है। वे जनता जनार्दन की उक्ति बनकर मानव जीवन की अनुभूतियों को चारुता से अभिव्यंजित करती आ रही हैं।

उक्ति के साथ ही 'प्राज्ञोक्ति' शब्द भी आता है, जिसके अन्तर्गत प्रज्ञासूत्र व्यवहारसूत्र और मर्मोक्ति आती है। प्रज्ञासूत्र एक संक्षिप्त, सारगभित उक्ति है, जिसमें किसी सामान्य सत्य की अभिव्यक्ति होती है और वही उक्ति इतनी प्रभावशाली होती है कि एक बार सुनने मात्र से उसके विस्मृत हो जाने की सम्भावना नहीं रहती। यही सूत्र जो कि प्राचीन काल से हमारे देश में चले आ रहे हैं हम दो वर्गों में बाँट सकते हैं।

प्रज्ञासूत्र—इसका सम्बन्ध आध्यात्मिक ज्ञान. नैतिक, धार्मिक उपदेश से है।

विधासूत्र—इसका सम्बन्ध ज्योतिष, व्याकरण छन्द नाट्य आदि विधाओं से है। कहावत और प्रज्ञासूत्र में अन्तर केवल यही है कि कहावत (लोकोक्ति) लोक द्वारा स्वीकृत होने पर अपनाई उक्ति है और प्रज्ञासूत्र, विद्वानों की उक्ति ही मानी जाती है।

इसी प्रकार कर्मोक्ति और व्यवहारसूत्र अपने विस्तृत अर्थ में चाहे कुछ भी अर्थ क्यों न प्रकट करें वे सभी कहावत के ही अन्तर्गत रखे जाते हैं। जैसे कोई प्राणी अपने बाल-बच्चों सहित देशाविदेश में घूमकर स्वयंभू जब अपने जन्म स्थान पर पहुंचता है तो भूत की घटनाओं को धीरे-धीरे भूल जाता है। इसी प्रकार प्रज्ञासूत्र अथवा विधासूत्र हैं। मर्मोक्ति व्यवहार सूत्र, सुभाषित और रोजमर्रा सभी कुछ जनता की, जनता के खिये, जनता द्वारा अर्जित सम्पत्ति है; जो "ज्यों-ज्यों खर्चें त्यों-त्यों बढ़, बिन खर्चे घटि जात"।

तुलसी धनी घराने के न थे। उन्हें जीविकोपार्जन के लिये दूर-दूर घूमना पड़ा। मानव जीवन की यथार्थ विभीषिकाओं और कटु अनुभवों से उनका पर्याप्त परिचय हुआ था। देशाटन और सत्संग ने उन्हें कोरे किताबी ज्ञान के अतिरिक्त मानव जीवन की विविधताओं और जटिलताओं का ज्ञान कराया और इसी आधार पर उन्हें लोककवि कहा गया। लोक कवि होने के साथ तुलसी ने अपने साहित्य में उक्तियों का प्रयोग किया। तुलसी की कहावतों में 'गागर में सागर' भरने का सामर्थ्य है। उनकी सर्व प्रसिद्ध उक्ति 'पराधीन सपनेहुँ सुख नांहि" को ही लीजिये। कवि ने इस उक्ति द्वारा भारतीय जाति को स्वतन्त्रता का मूल्य पहचानने के लिये अंकुश लगाया है। इसी तथ्य को आत्मसात करने और करवाने के लिगे कितने ही ग्रँथों की रचना की जा सकती है। तुलसी ने एक ही उक्ति में ऐसा तथ्य हमारे सामने रखा जो शाश्वत सत्य है।

तुलसी की उक्तियों की विशेषता उनकी लय और गति में निहित है। लय ही मानो वह अमृत है जिसे पीने के बाद कोई भी कहावत अथवा उक्ति अमरता को प्राप्त कर लेती है। तुलसी की उक्तियां आज भी वही हैं, जो कल थीं और कल भी उनका वही महत्व होगा।

"प्रभुता पाई काहि मद नाहि" तुलसी की सर्वप्रसिद्ध उक्तियों में है, परन्तु इस उक्ति के पीछे गहन जीवन दृष्टि छिपी है। ऐसा कहने के पहले कवि को अनुभव की भट्टी में स्वयं को जलाना पड़ा है।

तुलसी की उक्तियों में प्रभावशीलता और लोकरंजकता के गुण भी विशेष रूप से दिखाई देते हैं। उदाहरण के लिये "जहां सुमति तहं सम्पत्ति नाना, जहां कुमति तहँ विपत्ति विधाना" इसी के साथ एक और उक्ति लें—

"जब-जब होय धरम की हानि, बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी,
एहि अनीति जाइ नहिं वरनी, सीदहिं विप्र धेनु सुर धरनी।
तब-तब प्रभु धरि विविध सरीरा, हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा"

ये उक्तियाँ पर्याप्त प्रभावशाली ढंग से व्यक्त हुई है । इसी तरह तुलसी की लाखों उक्तियों को उदाहरणस्वरूप दिया जा सकता है। सम्भवतः इसी आधार पर हैबेल ने उक्तियों की तीन विशेषताओं में कुलबुलापन या चटपटापन को भी एक माना है।

तुलसी की उक्तियों में सरल शैली का सुन्दर पुट मिलता है, इसका कारण है कि सरल शैली में अभिव्यक्ति सुगमता और शीघ्रता से ग्राह्य होती है। भिणति की भंगिमा के कारण कुछ कहावतें अनूठी होती हैं, जिनके प्रयोग से बात में न केवल चुस्ती आती है, बलिक शैली की सरलता के कारण हमारा मन भी अत्यन्त प्रसन्न हो जाता है। जैसे—

दैव दैव आलसी पुकारा।
हित अनहित पसु पच्छिहु जाना।
बाँझ कि जाने प्रसव की पीरा ।

आदि ऐसी अनेक कहावतें हैं, जिनके पर्यावलोकन से यह बात विदित हो जाती है कि शैली की सरलता के कारण कथन में विदग्धता आ गयी है।

तुलसी का धर्म और उक्तियां :—तुलसी की अनुभूति थी कि भक्ति का द्वार सबके लिये खुला है। उसके द्वार पर न केवल पंडित मूर्ख का भेद है और न ऊंच-नीच का विचार। ज्ञान और कर्म के लिये अधिकारी भेद निर्धारित है। पर भक्ति के लिये सभी अधिकारी हैं। जिस प्रकार भोजन करते समय प्रत्येक कौर के साथ तुष्टि, पुष्टि और क्षुधा निवृति होती है उसी प्रकार भक्ति से भी तीनों बातें (ईश्वर-प्रेम, ईश्वरानुभूति और वैराग्य) एक साथ प्राप्त होती हैं। यही वह मार्ग है जिसमें सर्वसाधारण भी सरलता से भगवत्प्राप्ति का संदेश प्राप्त करता है और इसी व्यापकता के कारण भक्तिमार्ग ने जितना जनसमुदाय को प्रभावित किया उतना और किसी मार्ग ने नहीं। तुलसी के भगवान राम ने निराश्रित तथा निरीह जनता के कंटकाकीर्ण जीवन पथ में उनकी छोटी-बड़ी समस्त अनुभूतियों के साथ कैसा तादात्म्य पाया—यह भारतीय साधकता के इतिहास में अवश्य अभूतपूर्व घटना है । भक्ति के बिना मानव हृदव की स्वाभाविक वासना की पूर्ण परितृप्ति असम्भव है।

तुलसी के समय वैदेशिक आक्रमणों के उत्पात तथा आन्तरिक कनहीं और उपद्रवों से से अभिभूत जनता को स्वस्थ करने की महान आवश्यकता थी। यह कार्य केवल मर्मस्पर्शी उक्तियों के बल पर ही सम्भव था। तुलसी का सूक्ति भण्डार रुग्न समाज के लिये महोषधि का काम करता है। रोगत्राण की पहचान कर उसके परिहारार्थ अपनी मान्यता और शक्ति के आधार पर उन्होंने अथक परिश्रम किया। उनकी उक्तियां पंडित समाज के साथ-साथ सर्वसाधारण प्राणी के होंठों पर भी अनायास थिरक उठती हैं । जीवन के गहन अनुभव से मंजी हुई साधारण से

साधारण बातों को उनकी सुन्दर उक्तियों ने आत्मसात किया है । कुछ उदाहरण भी हम देख सकते हैं—

१. गोधन, गजधन, बाजिधन और रतन धन खान ।
जब आवे संतोष धन, सब धन धूरि समान ।

२. काम, क्रोध, मद लोभ की, जब लग मन में खान,
का पंडित का मूरखौ दोऊ एक समान ।

३. नीच निचाई नहिं तजइ, जौ पावई सतसंग,
तुलसी चन्दन विटप बसि बिनु बिख भै न भुजंग ।

४. सुनिअ सुधा देखिअऊहिं गरल सब करतूति कराल,
जहं तहं काल उलूक बक मानस भक्त मराल ।

५. जलचर थलचर गगनचर देव दनुज नर नाग ।
उत्तम मध्यम अधम खल दस गुन बढ़त बिभाग ।

इस संक्षिप्त विवरण से तुलसी की गहन जीवन दृष्टि स्पष्ट उभर आती है । उन्होंने अपनी सूक्ष्म अनुभूति के आधार पर जो सूक्तिसाहित्य संसार को भेंट किया वह "घाव करैं गम्भीर" वाली उक्ति को चरितार्थ करता है ।

गोस्वामी श्री तुलसीदास का वैदिक ज्ञान

---श्याम नारायण राय

कुछ लोगों की यह धारणा है कि 'वेदों में रामकथा के न होने पर भी तुलसी ने अपने राम चरित मानस को 'निगमागमसम्मतं[1]' कहा है तथा वेदो द्वारा रामयशोगान का अनेकशः उल्लेख किया हैं। जैसे—

बन्दौ चारिउ वेद, भव बारिधि बोहित सरिस।
जिन्हहि न सपनेहु खेद, रघुबर बिसद जस।[2] आदि

इन विद्वानों का कथन है कि अपनी कृतियों को प्रमाणिक बताने और सम्मान दिलाने के लिए ही कवि ने ऐसा किया है। वस्तुतः उसे वेदों का ज्ञान नहीं था।[3]

उपर्युक्त कथन तुलसी की कृतियों में गहन अध्ययन का अभाव प्रकट करे या न करें, तुलसी के प्रति असूया का भाव अवश्य प्रकट करता है। अब विचारणीय यह है कि क्या बास्तव में तुलसी बेदों से अनभिज्ञ थे।

१. रामकथा वेदों में मिलती है या नही यह एक स्वतन्त्र विचार का विषय है। रामकथा वेदों में न होने पर भी गोस्वामी जी वेदानाभिज्ञता नहीं प्रकट होती क्योंकि रामकथा के सम्बन्ध में कहीं भी गोस्वामी जी ने यह नहीं कहा है कि मैंने यह कथा वेदों से ली है। अपनी रामकथा की परम्परा को वे शिव से जोड़ते हैं। उसके आदि वक्ता वेद या ब्रह्मा न होकर स्वयं भगवान शंकर हैं। यथा—

संभु कीन्ह यह चरित सुहावा।
बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा॥
सोई सिवकाग भुसुंडिहि दीन्हा।
राम भगत अधिकार चीन्हा॥
तेहि सन जागबलिक पुनि पावा।
तेहि पुनि भरद्वाज प्रतिगावा॥[4]

---

१. मानस मंगलाचरण श्लोक—७
२. मानस बालकाण्ड दोहा—१४
३. देरिव 'तुलसी और वेद, ले० गंगा सहाय 'प्रेमी', सरिता नवम्बर १९६०
४. मानस— १।२९।३५

मैं पुनि निजगुरु सन सुनी, कथा सो सूकर खेत ।
समुझी नहिं तसि बालपन, तब अति रहेउं अचेत ।।[1]
तदपि कही गुरु बारहि बारा ।
समुझि परो कछु मति अनुसारा ।।[2]

२. अब प्रश्न यह उठता है कि क्या वेद तुलसी के राम का यशोवर्णन करते हैं। इसका उत्तर स्वीकृति में दिया जा सकता है। यहां यश का अर्थ स्वरूप या गुण समझना चाहिये क्योंकि गोस्वामी जीने इस तथ्य की ओर स्पष्ट संकेत किया है—

सारदा सेष महेस विधि, आगम निगम पुरान ।
नेति नेति कहि जासुगुन; करहिं निरन्तर गान ।।[3]
तुलसी के राम सगुण और निर्गुण दोनों हैं। वे सगुण और निर्गुण में कोई भेद नहीं मानते ।।

जोगुन रहित सगुन सोई कैसे ।
जलहिम उपल बिलग नहि जैसे ।।[4]

व्यापक अकल अनीह अज, निर्गुन नाम न रूप ।
भगत हेतु नाना विधि, करत चरित्र अनूप ।।[5]

गोस्वामी जी के अनुसार राम, ब्रह्म औरं विष्णु में अबेदता है जैसे—

राम ब्रह्म परमारथ रूपा ।
अयगत अलख अनादि अनूपा ।।[6]
एव मस्तु कहि रमा निगसा ।
हरषि चले कुम्भज रिषि पासा ।।[7]
सुनत अगस्ति तुरत उठि धाए ।
हरि बिलोकि लोचन जल छाए ।।[8]

---

१. वही—१।३०
२. वही— १।३०।१
३. वही—१।१२
४. वही— १।११५।३
५. मानस— १।२०५
६. वही— २।९२।७
७. वही— ३।११।१
८. वही— ३।११।९

राम, ब्रह्म, अविगत, अलख, अनादि अनूप, रमानिवास तथा हरि इत्यादि शब्दों के एक ही अभिधान के पर्यायवाची रुप में प्रयुक्त होने के कारण कहा जा सकता है कि तुलसी के राम के विष्णु या ब्रह्म रूपों का चारों वेदों में वर्णन हैं ।

स्वतन्त्र रूप में तो विष्णू के सम्बन्ध में सूक्त हैं ही अन्य देवताओं के प्रति प्रयुक्त सूक्तो का भी व्यंजनात्मक अर्थ ब्रह्म प्रतिपादक माना जाता है ।[1] उपनिषद या वेदान्त तो निगुर्ण और सगुण के विवेचन से भरे पड़े हैं ।[2]

उपनिषद् साहित्य नाम मात्र से अलग प्रतीत होने के कारण वेदों अलग से नहीं माने जा सकते; क्योंकि संहती, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदों का समवेत नाम ही वेद है । आपस्तम्ब के अनुसार :—

"मन्त्रब्राह्मणयोर्वेद नाम धेयम"[3]—मन्त्र और ब्राह्मणों का नाम वेद है । मन्त्र संहिता भाग को कहते हैं । ब्राह्मण के तीन भाग होते हैं—

ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् ।[4] श्री शंकराचार्य ने भी जहां कहीं भी अपने भाष्यों में उपनिषद् वाक्यों को उद्धृत किया है—"इति समान प्रकरण श्रुतेः"[5] "तथा च वेदे"[6] तथा "इति श्रुतेः"[7] आदि कहा है । इस प्रकार यदि अपनी पूर्व परम्परा का अनुसरण कर गोस्वामी जी भी उन्हें वेद मानते है तो कोई अपराध नहीं कर बैठते । राम पूर्वतापिन्युपनिषद्,[8] रामोत्तरतापिन्यु-पनिषद् तथा राम रहस्योपनिषद्, सभी राम का यशोगान करती हैं । ये उपनिषदें अथर्ववेदीय हैं ।[9] अतः तुलसी का बारबर श्रुतियों की साक्षी देना झूठ नहीं है ।

---

१. ऋग्वेद खण्ड—१, प्रकाशक संस्कृत सँस्थान बरेली, भूमिका, लेखक श्री राम शर्मा पृष्ठ—१७—१९

२. भारतीय दर्शन लेखक—श्री बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ—४९ तथा ५५

३. आपस्तम्ब परि०—३१

४. (१) देखिए 'वैदिक साहित्य और संस्कृति' —ले०—श्री बलदेव उपाध्याय, पृ०-११९
   (२) "अब मैं वेद के तीसरे भाग पर आता हूं । जिसे उपनिषद् या गूढ़ सिद्धान्त कहा जाता है ।·········ये मन्त्र और ब्राह्मण के समान केवल ये ही व्यवहारतः सभी विचारवान् हिन्दुओं के वेद हैं ।"—'भारतीय प्रज्ञा' अनु० रामकुमार राय, प्रकाशक—चौखम्बा संस्कृत वि० भवन, काशी, पृष्ठ-३४ ।
   (३) देखिये—उपनिषदों की भूमिका—डा० राधा कृष्णन, पृष्ठ-२१ ।

५. छा० उ०—१।२।२ पर शंकर भाष्य ।

६. छा० उ०—शंकर भाष्य, गीता प्रेस पृष्ठ-४१ ।

७. मु० उ०—३।२।१ पर शंकर भाष्य ।

८. दे० १०८ उपनिषदें, साधना खण्ड, प्रकाशक—संस्कृत संस्थान, बरेली ।

९. (१) दे० राम भक्ति शाखा—डा० रामनिवास पाण्डेय, पृष्ठ-१ तथा ५१५ ।
   (२) भारतीय दर्शन, बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ-५०-५८ ।
   (३) वैदिक साहित्य और संस्कृति—बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ-२५४ ।

(३) गीता में भगवान् कृष्ण ने कहा—

"वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो ।"[१] मन्त्र भाग में कृष्ण या कृष्ण कथा का स्पष्ट अभिधात्मक उल्लेख नहीं मिलता (उपनिषदों में है) । तो क्या इससे मान लिया जाये कि महाभारत तथा विविध पुराणों के रचयिता और वेदों के सम्पादक महर्षि वेद व्यास वेद ज्ञान शून्य थे ? इसी प्रकार अध्यात्मरामायण में अनेकशः राम के सम्बन्ध में आता है :—

(१) "यत्पाद पंङ्कजरजः श्रुतिर्भिविमृग्यम् ।"[२]

(२) "पश्यामि यत्पाद रजो विमृग्यम्,
ब्रह्मादि देवैः श्रुतिभिश्च नित्यम् ।"[३]

(३) "रतिपतिशतकोटिसुन्दराङ्गम्,
शतपथगोचरभावना विदूरम् ।"[४]

(४) "मत्स्यादिरूपेण यथा त्वमेकः,
श्रुतौ पुराणेषु च लोक सिद्धः ।"[५] इत्यादि ।

उपर्युक्त कथनों को देख कर और उपलब्ध भाग में रामायण का अभिधात्मक उल्लेख न पाकर क्या यह कह देना समीचीन है कि व्यास वेदों को नहीं जानते थे ? वस्तुतः तथ्य यह है कि जो बात निर्गुण ब्रह्म के प्रति कही गयी हो वही बात सगुण के प्रति कहने में प्राचीन आस्तिक जन कोई आपत्ति अनुभव नहीं करते थे । उनके अनुसार एक ही भगवान् विविध नाम रूपों में व्यक्त है तथा वेदपुराण, रामायण, महाभारतादि में वही सर्वत्र गाया जाता है—

"वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा ।

आदौमध्ये तथा चान्ते हरिः सर्वत्रगीयते[६] ।।

तुलसीदास भी इस तथ्य को मानते हैं । उनके राम भी व्यापक हैं—हरिव्यापक सर्वत्र समाना[७] । वे विश्वरूप हैं—"विश्वरूपरघुवंशमणि[८] । अस्तु, व्यापक ब्रह्म के प्रतिकथित कथनों को राम के प्रति मान लेना भक्तकवि के लिये सर्वथा स्वाभाविक ही है ।

---

१. गीता—१५।१५
२. अध्यात्म रामायण १।५।४७
३. वही २।६।३
४. वही ३।६।५३
५. वही ६।१५।५८
६. महाभारत, स्वर्गारोहण पर्व
७. मानस १।१८४।५
८. वही ६।१४

४. अनुश्रुतियों और प्रशस्तियों से भी ज्ञात होता है कि तुलसी स्तुतिशास्त्र पारंगत थे। भाषा में रामचरित लिखने के कारण ही तुलसी को अनेक कष्ट उठाने पड़े थे। यदि वे श्रुति अप्रसिद्ध बात भी लिखते तो आज तक श्रुतिश्रद्ध हिन्दू समाज उन्हें इतनी पूज्य दृष्टि से नहीं देखता। वे स्वयं इस तथ्य को खूब समझते थे कि वेदों के विपरीत बात करने वाला अवतार भी अपने यहां निन्दा का पात्र बन जाता है—

अतुलित महिमा वेद की, तुलसी किए विचार।
जो निन्दत निन्दित भयो विदितबद्ध अवतार[1]॥

उन्हें यह भी भली-भांति ज्ञात है कि वेद वह सरोवर है जहां से पानी लेकर सभी सम्प्रदाय वाले अपने-अपने मतरूपी खेत को सींचते हैं—

"बुध किसान सरवेद निज, मतें खेत सब सींच।
तुलसी कृपि लखि जानिबो, उत्तम मध्यम नीच[2]॥

अब यह बात सोचने की है कि जो व्यक्ति वेदों का इतना अधिक महत्व जानता था और पठन-मनन भजनादि के अतिरिक्त जिसका कोई दूसरा धन्धा नहीं था। सत्संग को जो संसार का सर्वोत्तम सुख मानता था[3], विद्वानों के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा रखता था[4] तथा वेदानभिज्ञ ब्राह्मणों को शोचनीय समझता था।[5] वह वेदानभिज्ञ कैसे हो सकता है? वैदिक विद्वानों का संसर्ग तथा वेद व्याख्यानादि उसे अप्रिय क्यों लगने लगे हों?

५. तुलसी की उक्तियों में वैदिक मन्त्रों का स्पष्ट प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है। उदाहरण के लिये मंदोदरी द्वारा राम का विश्व रूप वर्णन ऋग्वेदीय पुरुष सूक्त से बहुत मिलता-जुलता है—

सीस अज धामा[6] — शीर्ष्णोद्यौः[7]।
नयनदिवाकर[8] — चक्षो : सूर्यो अजायत[9]।
स्रवन दिसा दस[10] —दिशः श्रोत्रात्।[11]

१. दोहावली ४६४ २. दोहावली ४६५

३. तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिय तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिली जो सुख लव सतसंग॥ मानस ५।४

४. सुजन समाज सकल गुन खानि। करौं प्रनाम सप्रेम सुबानी॥ मानस १।१।४
बिधि हरि हर कबि कोबिद बानी कहत साधु महिमा सकुचानी॥ वही १।२।११
बिबुध बिप्र बुध ग्रह चरन, बन्दि कहऊं कर जोरि॥ मा० १।१४

५. सोचिय बिप्र जो वेद विहीना। तजि निज धरम विषय लय लीना। मा० १७१।३

६. मानस—६।१४।१,

७. ऋ० १०।७।९०।१४

८. मानस—६।१४।२,

९. ऋ० १०।७।९०।१३

१०. मानस—६।१४।४,

११. ऋ० १०।७।९०।१४

मारुत श्वास[१] — प्राणाद्वायुरजायत ।[२]
आनन अनल[३] — मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च ।[४]
मन ससि[५] —चन्द्रमा मनसोजातः ।[६]

मानस के मंगलाचरण में सीता की स्तुति में लिखे श्लोक—'उद्भवास्थिति संहार कारिणीं क्लेशहरिणीम्[७] से समानता रखनेवाली सीतोपनिषद् में उद्धत—

उत्पत्तिस्थिति संहारकारिणी सर्वदेहिनाम् ।[८] शौनकीय तन्त्र की यह उक्ति मिलती है ।

नीचे कुछ और उक्तियां दी जा रही हैं, जिनमें वैदिक शब्दावली का प्रयोग या वैदिक वाक्यों की छाया स्पष्ट परिलक्षित होती है:—

(१) नेतिनेति जेहि निगम निरूपा[९]—सएष नेति नेति आत्मा ।[१०]
(२) जानत् तुम्हहि तुम्हहि होई जाई[११]—ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति ।[१२]
(३) होइहह मुकत न पुनि संसारा ।[१३] लीन भइ जहं नहि फिरे ।[१४] न च पुनरावर्त्तते ।
(४) सब कर परम प्रकाशक जोई[१५]—तमेवभान्तमनुभाति सर्वम् ।[१६]
(५) राम ब्रह्म परमारथ रूपा[१७]—परं ब्रह्म परं धाम ।[१८]
(६) सवज्ञ सर्वेश खलु[१९]—एष सर्वेश्वरः ।[२०]

---

१. वही ६।१४।४,
२. ऋग्वेद १०।७।६०।१३
३. वही ६।१४।६,
४. वही १०।७।६०।१३
५. वही ६।१५
६. वही १०।७।६०।१३
७. मानस मंगला चरण श्लोक—६
८. सीतोपनिषद्—७
९. मानस—१।१४३।५
१०. बृ० उ०—४।४।२२
१३. मानस—२।१२६।३
१४. म० उ० ३।२।६
१५. मानस—१।१३८।७
१६. मानस—३।३५।६
१७. छा० उ०—८।१५।१
१८. मान—१।११६।६
१९. क० उ०—२।२।१५
२०. वही—२।६२।७
२१. बृ० उ०—२।३।६

(७) सबके डर अन्तर बसेहु[१] —सर्वभूताधिवासः ।[२]

(८) व्यापक ब्रह्मनिरंजन निर्गुणनामन रूप[३]—साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ।[४]

(९) विनुपग चलै[५]—अनेजदेकं मनसोजवीयः ।[६]

(१०) उमा जेराम चरन रत विगत काम मद क्रोध । निज प्रभु मय देखहिं जगत केहि सन करहि विरोध ।[७] — तत्र को मोहः कः शोक । एकत्व मनुपश्यतः ।[८]

(११) निज निज निज मति मुनि हरि गुन गावहिं ।[९]—एको सद्सद्विप्रा बहुधा वदन्ति ।[१०]

(१२) अस प्रभु छाड़ि भजहि जे आना । ते नर पशु विनु पूंछ विषाना ।।[११] — योऽन्यां देवतामुयास्ते अन्योऽसाऽवन्योऽहमस्मीति न वेद यथा पशुः ।[१२]

(१३) विश्वरूप रघुवंशमानि ।[१३]—आत्मैवेदं सर्वम् ।[१४] पुरुष एवेदं विश्वम् ।[१५] ब्रह्मैवेदं विश्वम् ।[१६]

(१४) निज प्रभु मय देखहि जगत[१७]—यत्रनान्यत्पश्यति नान्यद्विजानाति ।[१८]

---

१. विनयपत्रिका—५१।८
२. मा० उ०—६
३. मानस—२।२५७
४. म० उ०—६।११
५. मानस—१।१६८
६. मं० उ०—६।११
७. मानस—१।११७।५
८. ई० उ०—४
९. वही—७।११२
१०. ई० उ०—७
११. वही—७।९०।४
१२. ऋग्वेद—१।२२।१६४।४६
१३. वही—५४९।१
१४. बृ० उ०—१।४।१९
१५. वही—६।१४
१६. छा० उ०—७।२५।२
१७. मु० उ०—२।१।१०
१८. मु० उ०—२।२।११
१९. मानस—७।११२
२०. छा० उ०—७।२४।१

(१५) अन्तरयामीरामे[1] --एष त आत्मान्तयम्यिमृतम् ।[2]

(१६) जाकी सहज स्वास श्रुति चारी ।[3] ---यस्ययहतोभूतस्य निःश्वसित मेतद्
ऋग्वेदो यजुवेदःस मवेद ।[4] ऽथर्वाङ्गिरस इति ।

(१७) मन समेत जेहिजान न बानी ।[5] ---यतोवाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनरम सह ।[6]

(१८) प्रान प्रान के जीव के ।[7] --प्राणस्य प्राणम् ।[8]

(१९) जेहिसमान अतिशय नहि कोई ।[9] --यस्मात्परं नापरमस्ति किंचित् ।[10]

(२०) राम सत्य एंकल्प प्रभु[11]--सत्य एङ्कल्पः ।[12]

(२१) अमित रूप प्रगटे तेहिकाला[13]--इन्द्रोमायाभिः पुरुरूप ईयते ।[14]

(२२) जेहिसमान अतिसय नहि कोई[15]--न तस्यप्रतिमास्ति यस्य नाममहद्यशः[16]

(२३) सर्वसर्वगत[17]--सर्वगतं सुसक्ष्मम्[18]

(२४) जो आनंद सिन्धु सुखरासी ।[19] एतस्यैवानव्दस्याव्यानि भूतानि
सीकर ते त्रैलोक सुपासी ।। मात्रामुपजीवन्ति ।[20]

---

१. मानस—२।२०६
२. बृ० उ०—३।७।३-२२
३. वही—१।२०३।५
४. बृ० उ०—२।४।१०
५. मानस—१।३४०।७
६. तै० उ०—२।६
७. वही--२।२६०
८. बृ० उ०--४।४।१८
९. वही—३।५।८
१०. ना० उ०--१२।३
११. मानस—६।४१
१२. छा० उ०—८।७।१
१३. मानस—७।५।५
१४. ऋ०—६।४।४७।१८
१५. मानस—३।५।८
१६. श्वेत० उ०—४।१९
१७. वही—७।३३।६
१८. मु० उ०—१।१।६
१९. वही—१।१९६।५
२०. बृ० उ०—४।३।३२

(२५) जेहि जग किय । इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधानिदधे ।
तिहु पगहुं ते थोरा ।[१] पदम् । समूहलमस्य पांसुरे ।[२]

(२६) त्रिविक्रम भये खरारी ।[३] त्रीणिपदाविचक्रभे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।[४]

(२७) तदपि करहि सम विषम विन्हारो ।[५] परापूर्वेषां सख्य ।[६] वृणक्ति वितर्तु राणो अपरेभिरेति ।

(२८) जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ । इह चेद वेदीदथ सत्यमास्ते
सोकृतनिंदक मंद मति आत्याह्न गति जाइ ।[७] न चेदिह्यवेदीन्महतीविनष्टिः ।[८]

(२९) सोहमस्मि ।[९] --अहं ब्रह्मास्मि ।[१०]

(३०) जेपि श्रुतिगाव ।[११]--सर्ववेदायत्पदमामनन्ति ।[१२]

इसी प्रकार की अन्य बहुत सी श्रुतियां उपस्थित की जा सकती हैं जिनकी आत्मा तुलसी की चौपाइयों में प्रतिष्ठित और मुखरित है । इतनी सारी श्रुतियों चा व्यापक रूप से प्रयोग धुनाक्षर न्याय से हो गया होगा, ऐसा मान लेना एक मात्र दुस्रमहस के अतिरिक्त कुछ नहीं होगा । वस्तुतः तथ्य यह है कि तुलसी की गहन अध्ययन जन्य प्रज्ञा में श्रुतियां और उनके शब्दार्थ प्रतिष्ठित थे और काव्य रचनाकाल में प्रसंगानुकूल स्वतः स्मृतिपटल से उतरकर काव्यविधा जड़ाई में बहुमूल्य रत्नों की तरह जड़ित हो गए हैं तथा आज भी उस जड़ाई को देखने वालों को अपनी प्रभा से आलोकित किये विना नहीं रहते । उपर्युक्त विवेचन गोस्वामी जी के वैदिक ज्ञान गरिमाव लोकन में एक लघु प्रयास है । तथ्य पाठकों के सामने है । इतने पर भी यदि किसी को थोड़ा भी संतोष न हो तो उसे कभी-कभी गोस्वामी जी की इस विनम्रवाणी का स्मरण कर लेना चाहिए :—

एतेहु पर करिहहि जे असंका । मोते अधिक ते................।

---

१. वही—२।१००।४
२. ऋ०—१।५।२२।१७
३. वही—४।२८।८
४. ऋ०—१।५।२२।१८
५. वही—२।२१८।५
६. ऋ०—६।४।४७।१७
७. वही—७।४४
८. के० उ०—२।५
९. वही—७।११७।१
१०. बृ० उ०—१।४।१०
११. वही—१।११३।८
१२. क० उ०—१।३।११

तुलसी का काव्य सम्बंधी दृष्टिकोण

—विमला गुप्त

प्रत्येक साहित्यकार समय से प्रेरणा ग्रहण करता है। उसके अपने युग की छाया उसके सम्पूर्ण काव्य में वर्तमान रहती है, और अनजाने ही साहित्यकार की रचनाएं युग की विचार-धाराओं का दर्पण बन जाती हैं। तुलसी भी इसके अपवाद नहीं थे। उनकी सामयिक परिस्थितियों पर विचार करने से विदित होता है कि उनका युग मानवीय मूल्यों के संस्खलन का युग था। देश में निराशा का निविड़ अन्धकार छाया था और जनता तमोभयी रात्रि में इधर-उधर भटक रही थी उस समय का समाज निराधार, नि संबल जीवन अनेकानेक विकृतियों में सांस ले रहा था। "धार्मिक और राजनैतिक आन्दोलनों की आंधी उसके नेत्रों में धूल झोंककर उसे भटकती निशा के अज्ञात पथ पर धकेलकर स्वस्वार्थ के विनिमित्त उसके प्राणवायु का निगरण करना चाहती थी।'

तुलसी के समय में सघर्ष मात्र न्याय और अन्याय का नहीं, शक्ति और स्वार्थ का था। महात्मा गौतम बुद्ध की भांति तुलसी का हृदय इस विडम्बना को देखकर, मानव-जीवन की नियति का अवलोकन करके करुणा से विगलित हो उठा। "तुलसी ने अनुभव किया कि अनगिन उपलब्धियों के बावजूद अधिकाश मानवीय जीवन विपन्न और विजण्ण है। सबके अपने-अपने नरक हैं। चाहे-अनचाहे सभी उसमें गिर रहे हैं, फिर भी न तो उनमें गिरने का एहसास है और न अपनी षारुण-स्थिति का बोध···उन्होंने जानना चाहा कि धरती पर स्वर्ग के अवतरण की समस्त सम्भावनाओं के बावजूद उसे यहाँ क्यों नहीं उतारा जा सका? उन्होंने पाया कि उन सबके कारण बाहर नहीं, भीतर हैं, और इन दयनीय स्थितियों के लिए मानव स्वयं ही जिम्मेदार है।' उन्हें लगा कि मानव के जीवन को समस्त दुःखों से बचाने के लिए एक ऐसा पथ दर्शाने की आवश्यकता है, जिस पर चलकर उसे शान्ति-लाभ हो सके। और वह पथ है राम भक्ति का। यही कारण था कि उन्होंने समस्त संसार को 'सियाराममय' मानकर 'जोरि-जुग पाणी' प्रणाम किया था।

वास्तव में तुलसी ने अपने युग के संघर्ष को उसी युग की भाषा में राक्षस और देवता समान मनुष्य का, अन्याय और न्याय का तथा धर्म और अधर्म का संघर्ष कहा था। और इसीलिए उन्होंने राम भक्ति को जीवन का अपरिहार्य अंग मानकर अंगीकार किया था कि वह संसार के समस्त विकारों और विकृतियों को दूर करने में सक्षम है।

तुलसीदास जी की रचनाओं की संख्या २० तक बताई जाती है किन्तु आ० रामचन्द्र शुक्ल आदि विद्वानों ने उनकी प्रामाणिक पुस्तकों की सँख्या १२ ही मानी है रामचरित मानस, विनयपत्रिका, कवितावली, गीतावली, श्री कृष्णगीतावली, दोहावली, पार्वती-मंगल, जानकी-मंगल, रामललानहछू, वैराग्य सँदीपनी, बखै-रामायण और रामाज्ञा-प्रश्न।

उनकी सभी रचनाओं को साहित्यकारों तथा रामभक्तों से विशेष आदर प्राप्त हुआ है। प्रो० सूर्यकान्त ने तुलसीदास को हिन्दी का शेक्सपियर माना है। क्योंकि जो सर्वांगीणता शेक्सपियर के कला-पक्ष में मिलती है, वह तुलसी में प्रखर रूप से विद्यमान है।

तुलसी महान सन्त थे, उनका दृष्टिकोण भक्तिपरक था अतः उनके सम्पूर्ण साहित्य की दृष्टि एक है, प्रेरणा एक है, पर उसे भावात्मक स्तर पर रूपायित करने के साधन अलग-अलग हैं। इन्हीं काव्यपरक कतिपय साधनों और आग्रहों के अन्तर्गत इनके काव्यों के विषयों का निर्माण हुआ है। उदाहरण के लिए विनय पत्रिका के पदों का जन्म तुलसी के मानव-हृदय की अतल गहराइयों से हुआ है। अनेक देवी देवताओं से केवल राम-भक्ति की याचना करके कवि जीवन की लक्ष्यहीनता को सही दिशा देने के प्रयास में सँलग्न दिखाई देता है। कवि की विनय ही विनयपत्रिका का वर्ण्य विषय है। कवितावली ओज एवं पौरुष का काव्य है। सत्य और असत्य का द्वन्द्व तथा आततायी को परास्त करके सत्य की प्रतिष्ठा करने का उत्साह कवितावली का प्राण है। गीतावली में जीवन की सुकुमार सँवेदनाओं को स्वर देने का प्रयास स्पष्ट है। गीतावली में भावुक स्थानों पर कवि का ध्यान अधिक है, उनमें उनका मन मानों रम गया है। यों कह सकते हैं कि कवितावली का पौरुष यहां कोमलता में बदल गया है।

रामचरित मानस लिखते समय कवि का काव्य सम्बन्धी दृष्टिकोण गन्थ के ही आरम्भिक पृष्ठों में मिल जाता है—

"नाना-पुराण-निगमागम-सम्मतं
यत् रामामणे कचिचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा
भाषानिबन्धमतिमंजुल मातनोति ॥"

स्पष्ट है कि रघुनाथ के चरित्र का गान हमारे कवि ने आत्म-परितोष के लिए किया था। तुलसी एक वीतराग एकान्त-सेवी सन्त थे, उन्हें किसी से कोई स्पृहा नहीं थी। राम ही उनके सर्वस्व थे। राम भी केवल सीतापति या दशरथ पुत्र राम नहीं, वल्कि वह राम जो मानव होकर भी परब्रह्म थे, पृथ्वी का भार उतारने के लिए जो अवतरित हुए थे। किसी साधारण राजा के अधीन होकर काव्य रचना करना तुलसी को नहीं भाया। प्राकृत जन का गुण-गान करना वह वाणी का दुरुपयोग मानते थे। रामचरितमानस के अन्वासाक्ष्य से इस बात की भली-भांति पुष्टि हो जाती है। कवि लिखता है—

"कीन्हें प्राकृत जन-गुन-गाना ।
सिर धुनि गिरा लागि पछताना ।।"

वास्तव में प्राकृत जन को काव्य का विषय बनाकर सच्चा कवि चल भी नहीं सकता, क्योंकि जैसे ही थोड़ा भी स्वार्थ रखकर चाटुकारिता प्रदर्शित की जाने लगती है, वैसे ही हृदय के स्वच्छन्द एवं नैसर्गिक भावों का कण्ठ अवरुद्ध हो जाता है । केशव आदि कवि इसके उदाहरण हैं ।

गोस्वामी तुलसीदास यद्यपि सन्त पहले थे साहित्यकार पीछे, तथापि महात्मा और महाकवि दोनों रूपों में वह वन्दना के पात्र हैं । किसी भी महात्मा के जीवन का प्रमुख लक्ष्य मानव-मात्र का कल्याण करना होता है । तुलसी का लक्ष्य उनके साहित्य में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है । स्वयं रामत्व में लीन होकर वह समस्त मानव-जाति को रामत्व में लीन करने की कामना करते थे । जो कुछ वह कहना चाहते थे वह जन-साधारण को ग्राह्य हो सके, इसी दृष्टिकोण से उन्होंने देववाणी के उस युग में भाषा में कविता करने का साहस किया । वह जानते थे कि विद्वानों को यह मान्य नहीं होगी इसीलिए लिखा—

'भाषा भनिति भोरि मति मोरी ।
हंसिने जोग हंसे नहिं खोरी ।।"

भाषा में काव्य-रचना करने पर कोई यदि उनका परिहास करे तो चिन्ता नहीं, क्योंकि—

'खल परिहास होय हित मोरा ।
काक कहहिं कलकण्ठ कठोरा ।।"

उनका विश्वास था कि साहित्य रचना में साधन से अधिक साध्य का महत्त्व होता है, भाषा से अधिक भावना का मूल्य होता है—

"का भाषा का संस्कृत भाव चाहिए सांच ।
काम जु आवै कामरी का लै करिये किमांच ।।"

संस्कृत उस समय विद्वानों की भाषा थी और विद्वानों की भाषा केवल विद्वान ही समझ सकते हैं, जन-साधारण के लिए उसका कोई उपयोग नहीं होता, तुलसीदास ने अपने समय के इस कटु सत्य का तीव्रता से अनुभव किया था, अतः उन्होंने अपने काव्य का माध्यम ऐसा चुना जिससे "सुरसरि सम सब कर हित होई ।' स्पष्ट है कि अपने काव्य का दृष्टिकोण स्वान्तः सुखाय स्वीकार करते हुए भी तुलसी बहुजन हिताय के पक्षपाती थे ।

साहित्य रचना करके यश प्राप्त करना तुलसी का इष्ट कभी नहीं रहा। यही कारण है कि उत्तम ग्रन्थ लिखकर उसमें अपने जीवन-चरित्र अथवा वैयक्तिक वर्णनों का लेश भी उन्होंने नहीं आने दिया। कहीं-कहीं दीनता दिखाने भर के लिए आत्म-चरित वर्णन मिल जाते हैं। तुलसीदास कवि-कर्त्तव्यों से भली-भांति परिचित थे। आत्म-प्रशंसा, आत्म-सम्मान और आत्महित का पलड़ा उनकी दृष्टि में समाज, राष्ट्र या यों कहें कि मानव-जाति के हित की तुलना में बहुत हल्का था। उनका काव्य-सम्बन्धी दृष्टिकोण अत्यन्त व्यापक था। एक ओर वह प्रमुख रूप से रघुपति के उदार चरित्र का गान करना चाहते थे, तो दूसरी ओर जाति तथा राष्ट्र के कल्याण के लिए कर्मरत थे। और इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा द्वारा उन्होंने हिन्दी कविता का ही नहीं, मानव-समाज का भी अत्यधिक हित साधन किया। तुलसीदास जी के उद्योग से राम-नाम की जो परम पावनी गंगा उस युग में प्रवाहित हुई, उसमें नहाकर हर आत्मा का कलुष धुल गया। तुलसी-साहित्य का प्राण, उसकी संजीवनी केवल राम-नाम है। अपने मानस के विषय की ओर इंगित करते हुए कवि ने लिखा है—

'यहि महं रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुराण श्रुति सारा॥
मंगल भवन अमंगल हारी। उमा सहित जेहि जपत पुरारी॥

कवि राम के नाम की महिमा गाने में सतत प्रयत्न शील रहा है इसीलिये तुलसी राम भक्ति के स्तम्भ माने गए हैं। उनका विश्वास था कि राम नाम मंगल को भवन, कल्याण का स्रोत और समस्त अमगलों को हरने वाला है। यों तो ईश्वर के अनेक नाम हैं किन्तु उन सबमें इन्हीं दो अक्षरों की विशेष महिमा है—

"अक्षर मधुर मनोहर दोऊ। वर्ण विलोचन जनजिय जोऊ॥
सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू। लोक लाहु परलोक निबाहू॥"

नाम में कवि की इतनी दृढ़ आस्था है कि स्वयं राम भी उसकी तुलना में नहीं ठहरते। राम ने अपने जीवन में कुछ ही पतितों का उद्धार किया था, जब कि उनका नाम असंख्य पापियों को तारने में समर्थ है। स्वयं कवि के शब्दों में—

"राम एक तापस तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥

जिस प्रकार तुलसी के जीवन का प्रमुख उद्देश्य राम की भक्ति करना था, उनकी काव्य रचना का दृष्टिकोण उस भक्ति भावना का प्रसार करके जनहित करना था, उसी प्रकार उनकी भक्ति-भावना का प्रमुख अंग अपने इष्ट का दासत्व ग्रहण करना था।

राम के नाम को तुलसी ने निर्गुण से श्रेष्ठ माना था। यद्यपि निर्गुण पंथ ईश्वर की सर्वव्यापकता, भेद भाव की शून्यता विभिन्न विरोधी मतों की एकता जैसे उत्कृष्ट सिद्धान्तों को लेकर आगे बढ़ा किन्तु उस पर चलकर अपढ़ जनता अनगढ़ बातों को ही सब कुछ मान बैठी और

दम्भ, अहंकार आदि दुवृत्तियों से उलझने लगी। हमारे कवि ने 'रामचरित मानस' और 'विनय पत्रिका' में खुलकर इसका खण्डन किया। उन्होंने अपने साहित्य के मन्थन द्वारा रामचरित-चिन्ता मणि का पुन: उद्धार किया, जन-जीवन को भक्ति का महामन्त्र दिया। उन्होंने जनता को राम का ऐसा स्वरूप दिखाया जो विष्णु का अवतार होते हुए भी केवल भक्तों के लिये नरलीला करता है राम के रूप में जन-मानस को उपासना का ऐसा दिव्य आलम्बन प्राप्त हो गया। जो हर्ष के समय उनके साथ हंसता, दु:ख में सहानुभूति दिखाई देता है।'

इन्हीं भगवान राम के नाम की उत्कृष्टता स्वीकार करते हुए तुलसीदास जी ने लिखा है—

"निर्गुण ते इति भाँति बड़, नाम प्रभाव अपार।
कहउँ नाम बड़ राम ते, निज विचार अनुसार।।"

निर्गुण की अपेक्षा राम-नाम की महत्ता स्थापित करते हुए भी तुलसी ने स्वीकार किया था कि निर्गुण और सगुण ब्रह्म वास्तव में एक ही हैं। निर्गुण ही भक्त के प्रेम के वशीभूत होकर सगुण बन जाता है। फिर भी निर्गुण ज्ञान साध्य होने के कारण सर्व सुलभ नहीं है। भक्ति स्वतन्त्र और निरपेक्ष है, ज्ञान-विज्ञान सब उसके अधीन हैं। भक्ति से ही ज्ञान की भी सृष्टि होती है और ज्ञान प्राप्त होने पर भी भक्ति की स्थिति बनी रहती है। उत्तरकाण्ड में कागभुशुंडि गरुड़ से कहते हैं—

"ज्ञानिहिं भगतिसिह नाहिं कछु भेदा। उभय हरहिं भव संभव खेदा।।

फिर भी ज्ञान का साधन पथ दुर्गम है, उसका एकमात्र कारण यही है कि निर्गुण साधन तथा ज्ञान-लाभ करते समय मन को कोई आश्रय नहीं मिल पाता––

'ज्ञान अगम प्रत्यूह अनेका। साधन कठिन न मन कहुं टेका।।

आ० रामचन्द्र शुक्ल ने बताया कि जन-साधारण के लिये भक्ति की महत्ता इसलिए भी अधिक है कि "हमारे यहां भक्ति शाश्वत तथा स्वस्थ जीवन-दर्शन के तत्वों के आधार पर चिरन्तन कल्याणकारी सौन्दर्य देखने की आदी रही है। प्रेम और श्रद्धा अथवा पूज्य बुद्धि दोनों के मेल से इस भक्ति की निष्पत्ति होती है।"

प्रेम और श्रद्धा जैसी उदात्त भावनाओं के मेल से उत्पन्न होने वाली भक्ति का आश्रय तुलसी ने जीवन भर नहीं छोड़ा। संसार की हर वस्तु उन्हें उसके सामने तुच्छ प्रतीत होती थी यहां तक कि काव्य-रचना भी इसके बिना उसी प्रकार शोभित नहीं होती, जिस प्रकार नारी अनेकानेक अलंकारों से अलंकृत होने पर भी वस्त्रविहीना सुन्दर नहीं लगती।

"भणिति विचित्र सुकवि वृत जोऊ। राम नाम बिनु सोह न सोऊ।।
विधुवदनी सब भांति संवारी। सोह न वसन बिना वर नारी।।"

इस प्रकार तुलसी ने अपने साहित्य को राम-नाम से सजाया संवारा है। राम के अद्वितीय भक्त होने के नाते उनके स्वभाव में नम्रता एवं सादगी का समावेश स्वयं ही हो गया था। अपने को अकिंचन मानना उनकी आदत थी। भक्त होते हुए भी अपने को नीचे और पतित मानते रहे, साहित्यकार होते हुए भी मूर्ख बने रहे। 'मानस' जैसा महाकाव्य लिखना तुलसी के ही बस की बात थी फिर भी बालकाण्ड में वह लिखते हैं--

"कविन होउं नहिं चतुर प्रवीना। सकल कला सब विद्या हीन।।
आखर अर्थ अलंकृत नाना। छन्द प्रबन्ध अनेक विधाना।।
भाव भेद रसभेद अपारा। कविता दोष गुण विविध प्रकारा।।
कवित विवेक एक नहीं मोरे। सत्य कहौं लिखि कागद कोरे।।"

अपनी साहित्य रचना में उन्हें केवल इस बात का विश्वास था कि उन्होंने 'कोरे कागद' पर जिस सत्य को अंकित किया है उसका ज्ञानी लोग शायद आदर कर सकें।

भणिति मोर सब गुण रहित, विश्व विदित गुण एक।
सो विचारि सुनिहहिं सुमति, जिनके विमल विवेक।।"

उनकी इस स्वीकारोक्ति से हम यह अर्थ कदापि नहीं निकाल सकते कि वह कवि नहीं थे हां इतना भली-भांति अनुमान कर सकते है कि वह निरभिमानी थे। दम्भ और आडम्बर उनको छू तक नहीं गया था, इसके विपरीत वह आत्माभिव्यक्ति का सर्वोच्च गुण निश्छल भावों का प्रकाशन मानते थे।

'रामचरित मानस' की रचना में उनके मनीषी एवं कवि दोनों ही रूप चरम स्थिति पर पहुंच गए हैं। डा० श्रीधर सिंह के शब्दों में--'मनीषी को विषय के धरातल पर लाने के लिए कवि ने राम की कथा से लेकर पात्र, काव्य विद्या और कथन की पद्धति तक में अनेक परिवर्तन और प्रयोग किये हैं। सम्पूर्ण काव्य 'उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रवाहू" की ही अभिव्यक्ति है। यहा कवि जीवन की समग्रता और उसकी गहराइयों को अधिक अधिकार से पकड़ता हुआ दिखाई देता है। लगता है, वह कविता नहीं, जीवन का काव्य लिख रहा है। इसीलिये इसमें सम्पूर्ण मानवीय जीवन को छूने की अधिक शक्ति है।"

प्रश्न यह उपस्थित होता है कि फिर तुलसी के "कवि न होउं नहिं चतुर कहाऊं" कहने का तात्पर्य क्या है? उनके सम्पूर्ण काव्य का मनन करने पर समाधान यह निकलता है कि काव्य रचना करते समय तुलसी का दृष्टिकोण विभिन्न काव्यांगों का कौतुक दिखाकर पाठकों पर प्रभाव डालना नहीं था अपितु साहित्य को माध्यम बनाकर वह सीधी सच्ची राम-भक्ति का मार्ग प्रदर्शित करना चाहते थे। उन्होंने बताया कि मेरी कविता में केवल 'विश्व विदित गुण एक' है जिस पर

उनकी पूर्ण आस्था थी कि विमल विवेक युक्त विद्वान उनकी कविता का अवश्य आदर करेंगे। फिर भी इतना तो सर्वविदित है कि तुलसी हिन्दी के कवि नहीं, सर्वश्रेष्ठ कवि थे। उनका विशाल काव्य-क्षेत्र उनकी प्रतिभा का सर्वोत्कृष्ट विशेषत्व है। रस, भाव, छन्द, अलंकार आदि सभी काव्यांगों का तुलसी को पूर्ण ज्ञान था उन्होंने सभी रसों का समान सफलता से परिपाक किया। उनके अकेले रामचरितमानस में ही सब रसों की झलक मिल जाती है यद्यपि उन्होंने कहीं भी इस बात को स्वयं स्वीकार नहीं किया। रसविषयक उनकी एक उक्ति प्रकार है—"जदपि कवित रस एकौ नाहीं" हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य में एक भी रस की विद्यमानता को स्वीकार न करना जहां एक ओर उनके स्वभाव की नम्रता का द्योतक हैं, वहां इस बात का भी परिचय देता है कि काव्य की सुन्दरता के लिए रस की अनिवार्यता स्वयं तुलसी भी मानते थे।

गोस्वामी जी ने यद्यपि अपनी रचना को स्वान्तः सुखाय बताया है, तथापि वह कृति के अर्थ और प्रभाव की प्रेपणीयता को अत्यन्त आवश्यक मानते थे। किसी रचना का ठीक वही भाव जो कवि के हृदय में था, यदि दूसरों तक न पहुंच सका तो ऐसी रचना शोभा को प्राप्त नहीं हो सकती, इसलिये काव्य का प्रयोजन उन्होंने 'सर्वभूतहित' को माना था सर्वभूतहित की दृष्टि से ही यद्यपि उन्होंने संस्कृत की 'काचरी' की उपेक्षा करके भाषा की 'किमांशु' को अपनाया था तथापि उनकी 'काचरी' राम-रंग में रंगी होने के चारण 'किमांचु' से भी अधिक मूल्यवान बन गई थी। भाषा पर जैसा अधिकार तुलसीदास का था वैसा कम ही कवियों का होता है। अवधी और व्रज, समय की प्रचलित दोनों भाषाओं पर उनका पूर्ण अधिकार था। उनकी मानस की भाषा पूर्वी और पश्चिमी अवधी, कवितावली, विनयपत्रिका, गीतावली और श्री कृष्ण गीतावली की भाषा व्रज एवं पार्वती-मंगल, जानकी मंगल और रामलला नहछू की भाषा पूर्वी अवधी है।

तुलसी के साहित्य में शब्द और अर्थ की रमणीयता सदा अभिन्न रही है। इसीलिए उनके काव्यों में अभिधा, लक्षणा और व्यंजना शब्द शक्तियां उतनी ही और उसी रूप में प्रयुक्त हुई हैं, जितनी आवश्यकता है। प्रसंग के अनुकूल ओज, माधुर्य और प्रसाद गुणों का भी यथोचित प्रयोग उनकी रचनाओं में मिलता है।

भावों को विशेष महत्व देकर तुलसी ने वाणी को सदैव सहायक अथवा साधन माना। उन्होंने केवल चमत्कार या अलंकार के लिये कभी नहीं लिखा। उनके इतने बड़े साहित्य में कहीं भी कदाचित ही कोई ऐसा अलंकार होगा जिसका प्रयोग कवि ने जाने—अनजाने न किया हो। अलंकार कविता-कामिनी की कान्ति को बढ़ाने में सहायक होते हैं। "गद्यात्मक अथवा पद्यात्मक रचनाओं में से जो आनंददायक, बुद्धि वर्द्धक किंवा ललित शब्द, वाक्य या भाव हैं, जो काव्य के रस को विशेष रुचिकर बना देते हैं, वे ही साहित्य शास्त्र में अलंकार कहलाते हैं।' प्राचीन साहित्यकारों ने लिखा था—

"उपमा कालिदासस्य, भारवेर्थगौरवम् ।
दण्डिनः पदलालित्यं, माघेसन्तित्रयोगुणः ।।

किन्तु तुलसीदास में कालिदास, भारवि, दण्डी और माघ सभी की कविता समाहित हो जाती है । आ० रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार––'भावों का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओं के रूप, गुण, क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने में कभी-कभी सहायक होने वाली युक्ति ही अलंकार है ।' तुलसी के अलंकार भी निःसन्देह भावों को स्पष्टता और तीव्रता प्रदान करने को प्रयुक्त हुए हैं ।

गोस्वामी तुलसीदास जैसी प्रबन्ध–पटुता हिन्दी के अन्य कवियों में दुर्लभ है । मानस की भिन्न-भिन्न घटनाएं शृंखला की कड़ियों की भांति परस्पर सम्बन्द्ध हैं । सफल चरित्र-चित्रण एवं प्रसंगानुकूल संवाद भी उनकी प्रबन्ध-पटुता के ही अंग है । इस संदर्भ में डा० बलदेव प्रसाद मिश्र के शब्दों में इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि "चरित्र-चित्रण में भी गोस्वामी जी ने कमाल ही किया है । जो चरित्र बड़े-बड़े सद्कवियों की कलम से भी धुंधले होकर निकले हैं, वे गोस्वामी जी की कलम का संयोग पाकर एकदम उज्जवल होकर चमक उठे हैं ।' डा० ग्रिफिथ की नजर में भी "सीता और राम जैसे चरित्र संसार-साहित्य में दुर्लभ हैं ।"

तुलसी की कला का सबसे बड़ा महत्व हमें इस बात में दिखाई देता है कि "उसमें सभी प्रकार के विरोधी तत्वों के समन्वय की विराट् चेष्टा है ।" यही कारण है कि तुलसी के काव्य जीवन-बोध के काव्य हैं । इस बोध को उनके अपने युग ने रूप दिया है, और मानव-जीवन की अनेकानेक समस्याओं से उसे सहारा मिला है । तुलसी अपने युग की पीड़ा और संघर्ष से विकल थे । विभिन्न परस्पर विरोधी मतों और मार्गों के प्रचार-प्रसार के फलस्वरूप होने वाली मानव की दुर्दशा उन्हें साल रही थी । "मन की पीड़ा और चेतना के इस देश को उन्होंने सच्चे मनीषी की भांति, सही परिप्रेक्ष्य में परखा और इन्हें मानव-जीवन की शाश्वत पट-भूमि प्रदान की । बोध-ग्रहण की उस प्रक्रिया में उनका मनीषी का रूप भी प्रखर रहा और कवि का रूप भी । मनीषी ने सत्य को पहचाना, कवि ने सत्य को भाव में डाला । कवि और मनीषी की समन्विति से उपजे बोध ने तुलसी के काव्यों के विषय निर्मित किए हैं ।" यही कारण है उनका सम्पूर्ण साहित्य समन्वय की महती चेष्टा से ओत प्रोत है । "लोक और शास्त्र का समन्वय गृहस्थ और वैराग्य का समन्वय, भक्ति और ज्ञान का समन्वय, भाषा और संस्कृत का समन्वय, ब्राह्मण और चाण्डाल का समन्वय, ऊंच और नीच का समन्वय, निर्गुण और सगुण का समन्वय, शैव और वैष्णव का समन्वय, पांडित्य और अपांडित्य का समन्वय उनकी कला आदि से अन्त तक समन्वय पूर्ण है" इस दृष्टि से तुलसी लोकनायक थे । डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में– लोकनायक वही हो सकता है, जो समन्वय कर सके । क्योंकि भारतीय समान में नाना भांति की परस्पर

विरोधी संस्कृतियां, साधनाएं, जातियां, आचारनिष्ठा और विचार पद्धतियों प्रचलित हैं। बुद्धदेव समन्वयकारी थे, गीता में समन्वय की चेष्टा है और तुलसी भी समन्वयकारी थे।'' वास्तव में तुलसी मानवीय पीड़ा, करुणा और देवोपम विवेक के अनन्य गायक रहे हैं। 'मानव-जीवन की प्रकृति उसकी नियति और स्वस्थ जीवन यापन के निमित्त इन सबकी सार्थक परिणति को उरेहना उनके कवि-कर्म का सबसे बड़ा काम्य था। इसे सच्चा उभार और उरहेण देने की निष्ठा के कारण ही उन्होंने 'प्राकृत जन-गान' के द्वारा किसी प्रकार की प्रतिबद्धता कबूल नहीं की। मानस जीवन के हर एक अंग को उन्होंने प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष वाणी दी। यही उनकी कृतियों का संवादी स्वर है।'

तुलसी ने युग को पहचाना था और उसके भले के लिए साहित्य स्वना की।यह सत्य इसका प्रमाण है कि उन्होंने बाल्मीकि रामायण को आधार बनाकर भी भवभूति, या कालिदास के युग को नहीं अपने युग को वाणी दी। आवरण लगभग समान होते हुए भी तुलसी की आत्मा बाल्मीकि से भिन्न है। उदाहरण के लिए एक घटना ली जा सकती है वाल्मीकि रामायण में राम आत्म प्रतिष्ठा के लिये युद्ध करते हैं, कालिदास के काव्यों में उनके नायक यश-प्राप्ति के लिये युद्ध का शंख फूंक देते हैं किन्तु इन सबसे अलग तुलसी के राम अन्याय का दमन करने के लिये शस्त्र उठाते हैं।

गोस्वामी जी की काव्य कला बहुत ऊंची है क्योंकि काव्य रचना का उनका दृष्टिकोण उससे भी महान है। उनकी कविता में जीवन के स्वरूप निर्माण की प्रेरणा है। वह जीवन की है और जीवन के लिए है। तुलसी की काव्य कला के विषय में श्री सदगुरू शरण अवस्थी लिखते हैं--''गोस्वामी जी की कृतियों में केवल सूखी सजगता ही नहीं, आर्द्र विस्मरण है। विश्व के समस्त रंगों से चित्रित, अलौकिक चमत्कार से पूर्ण होने पर भी गोस्वामी जी की सादी उक्तियां स्थल-स्थल पर एक के बाद एक निकलकर नाचते हुए मोर के पंखों की भांति फैलती चली जाती हैं। कवि अपनी वैयक्तिक भावना की पावन भूमि पर पहुंच जाता है और मार्ग में ऐसा प्रकाश विकीर्ण करता जाता है कि अन्धों को भी चलने का सहारा दी रखने लदता है।'' वास्तव में यही तुलसी के साहित्यकार को अभीष्ट भी था।

"तुलसी के राम"

—कुमारी मृदुल खन्ना

रामकथा में 'राम' एक ऐसे पात्र हैं जिनको केन्द्र बिन्दु मान कर कथा का सारा ताना-बुना गया है। 'रामकथा' बाल्मीकि की हो या तुलसी की, प्रत्यक्ष और परोक्ष, दोनों रूपों में 'राम' ही कथा से अधिक सम्बन्धित हैं। परन्तु बाल्मीकि की अपेक्षा तुलसी के राम जनमानस के हृदय में अधिक गहरे उतरे हैं। वह भारतीय समाज के प्रत्येक वर्ग के आराध्य बने हैं। तुलसी ने राम को हिन्दू जनता के हृदय के उस सूक्ष्म तन्तु के साथ जोड़ दिया है, जो अन्तःकरण से स्फूर्त एवं स्पन्दित है।

राम तुलसी के इष्ट थे इसलिए उन्होंने राम को ईश्वरत्व प्रदान किया है। वेदों और उपनिषदों के अव्यक्त ईश्वर को तुलसी ने परब्रह्म की साकारता प्रदान की। तुलसी ने 'राम' में ब्रह्मत्व और ईश्वरत्व के दोनों तत्वों को एकाकार किया है। 'मानस' में राम के अलौकिक और लौकिक, दो रूपों का चित्रण हुआ है। अलौकिक पक्ष में राम व्यापक ब्रह्म हैं, जो समस्त जगत् के नियन्ता हैं। वह 'परमारथ रूप', सच्चिदानंद, परमानंद और मायातीत हैं। वह विश्व की समस्त चेतना के मूल स्रोत हैं। तुलसी ने कहा है:—

राम ब्रह्म व्यापक जग जाना। परमानंद परेस पुराना॥[1]
ब्रह्म अनामय अज भगवंता। व्यापक अजित अनादि अनंता॥[2]

राम इस रूप में निर्गुण, निराकार, नित्य, अनादि और अनुपम हैं। उनके इस रूप को जानना कठिन है। जिनके चरणों का ध्यान करते-करते सारे ऋषि-मुनि थक जाते हैं और जिनके बारे में वेद भी नेति-नेति कहकर चुप हो जाते हैं उनको साधारण मनुष्य कैसे जान पायेगा:—

"राम ब्रह्म परमारथ रूपा, अबिगत, अलख, अनादि, अनूपा।
सकल विकार रहित गत भेदा, कहि नेति-नेति निरूपहिं वेदा॥"[3]

---

१. रामचरित मानस बालकांड, ११६/–४।
२. वही
३. रामचरित मानस, बालकांड, ९३/–४।

राम का यही निर्गुण ब्रह्मत्व भक्तों की रक्षा के लिये सगुणात्मक रूप धारण करता है। इसी में राम का विष्णुत्व है। तुलसी के राम साक्षात् ब्रह्म तो हैं ही, वह परम विष्णु भी हैं। वह भक्तों के कल्याण के लिये ही अवतरित हुए हैं। इसी में विष्णु का पालक पक्ष उभरता है। तुलसी ने स्पष्ट किया है:—

प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी। ब्रह्म निराहृ विरज अविनासी।।
भगत हेतु भगवान प्रभु राय धरेउ तनु भूप।
किए चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप।।[१]

तुलसी राम की सगुणात्मकता में ही उनके निर्गुणत्व की प्रतिष्ठा करना चाहते थे। तुलसी जानते थे कि निर्गुण ब्रह्म न प्रेमी बन सकता है, न सखा, न इष्ट। फलतः उन्होंने राम का सगुणपन उपस्थित किया। पर वह न सगुण को हाथ से जाने देना चाहते थे, न निर्गुण को वह तो समस्त देवी देवताओं, इष्ट देवों, विष्णु के अवतारों और त्रयी' को राम में लयमान करना चाहते थे इसलिए उन्होंने व्यापक ब्रह्म को कौशल्या की गोद में लीलाएँ करते हुए दिखाया। भक्ति के वश में निराकार ब्रह्म को सगुण रूप धारण करना ही पड़ा:—

व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुण बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौशल्या के गोद।।[२]

मानसकार ने राम में निर्गुण और सगुण का एकाकार करके ज्ञान और भक्ति की विरोधी रेखाओं को समानान्तर कर दिया है। उनके राम ब्रह्म, विष्णु, महेश तीनों से अधिक ऊँचे उठे हैं। मानस में स्थान-स्थान पर 'त्रयी' को राम के चरणों की वन्दना करते दिखाया गया है। दाशरथि राम का बल पाकर ही ब्रह्म विश्व का सृजन करता है, विष्णु उसका पालन और शिव उसका संहार। असंख्य लोकों में अगणित विष्णु और ब्रह्म हैं परन्तु अकेले राम ही एक ऐसी सत्ता हैं जो अभिन्न रूप से व्याप्त हैं:—

लोक लोक प्रति भिन्न विधाता। भिन्न विष्णु सिव मनु दिसित्रासा।।
भिन्न-भिन्न मैं दीख सबु अति विचित्र हरिजान।
अनगनित भुवन फिरेऊँ प्रभु राम न देखऊँ आन।।[३]

इस प्रकार राम का अलौकिक पद ब्रह्मा, विष्णु, महेश से ऊँचा उठकर रामत्व की पराकाष्ठा पर जा पहुँचा है।

---

१. वही; उत्तर कांड ७२, (क)।
२. रामचरित मानस, बालकांड, १९८।
३. वही उत्तर कांड, ८१।

राम के चरित्र का दूसरा पक्ष है—उनका लौकिक रूप। इस दृष्टि से राम पूर्ण मानव हैं, एक आदर्श पुरुष। उन्हें अपने जीवन काल में जो कुछ भी मिला राम ने उसमें पूर्णता पाई थी। प्रख्यात सूर्य कुल में जन्म लिया, चक्रवती सम्राट पिता मिला, वसिष्ठ और विश्वामित्र जैसे अद्वितीय ऋषियों से शिक्षा ग्रहण की, कौशल्या-सी वात्सल्यमयी मां मिली, सीता-सी पत्नी, भरत और लक्ष्मण सरीखे भाई मिले। इतना कुछ पा लेने के बाद भी राम किसी और की इच्छा कैसे कर सकते थे ?

आसपास से जो कुछ मिला, उसके कारण तो राम ने हर क्षेत्र में पूर्णता पाई ही थी, पर जो कुछ राम के 'स्वयं' में था, राम उसी कारण 'पुरुषों में उत्तम' थे। उनके व्यक्तित्व में सौन्दर्य, शील और शक्ति तीनों विभूतियों का समन्वय हुआ था।

सौन्दर्य के वह अमूल्य निधि थे। उनका सौन्दर्य 'कोटि काम लजावन हारा' था। राम के सुन्दर रूप का वर्णन तुलसी ने बाल्यकाल की घटनाओं के आधार पर किया है। राम का सौन्दर्य दशरथ के आँगन को तो ज्योतित करता ही रहा था। साथ ही साथ वह मिथिलापुरी के नर-नारियों को भी अमृत प्रदान करता रहा है:—

"निरखि सहज सुन्दर दोउ भाई। होहि सुखी लोचन फल पाई॥
जुबती भवन झरोखन्हि लागीं। निरखहिं राम रूप अनुरागी॥
कहहिं परस्पर बचन सप्रीती। सखि इन्ह कोटि काम छबि जीती॥
सुरनर असर नाग मुनि नाहीं। सोभा असि काहु सुनि अति नाहीं॥"*

राम की सुन्दर छवि गृहस्थियों से लेकर वीतरागी तपस्वियों तक के मन में छाई हुई थी। बच्चे-बूढ़े सभी उसमें बंध गए थे। सौन्दर्य का ऐसा व्यापक प्रभाव तुलसी के लिए सिवा राम के अन्य किसी पात्र में देखना कठिन था। जो व्यापक ब्रह्म है, उसी के पास ऐसी अमूल्य-निधि होगी।

राम का शील उनके सौन्दर्य को द्विगुणित करता है। राम जहां सौन्दर्य सिंधु हैं, वहीं शीलसिंधु भी। वह शील के पुंज हैं। शालीनता उनके चरित्र में स्थान-स्थान पर मिलती है। लक्ष्मण की उग्रता, जो किसी के आगे नहीं झुकती, उसे राम की शालीनता ही ठंडा करती है। परशुराम-भेंट में यदि राम की विनय और वीरता का प्रकटीकरण न होता तो परिणाम कितना भयानक होता। चित्रकूट में भरत को अयोध्यावासियों सहित आते देखकर लक्ष्मण के उद्वेग को राम के शीतल स्वभाव ने ही शांत किया था। विमाता ने वन-प्रवास की आज्ञा दे दी, पिता की मृत्यु हुई, भरत विरागी हुए, पर राम विचलित न हुए। उनके शील ने उन्हें हर स्थिति में सन्तुलित और सहज बनाये रखा।

---

* रामचरित मानस, बालकांड २२०।

राम की वीरता उनके शील स्वभाव और सुन्दर छवि को और भी चमत्कृत करती है। उनके बल और पराक्रम का प्रभाव बाल्यावस्था में ही मिल जाता है। विश्वामित्र के साथ वन जाते हुए मार्ग में राक्षसवध, मिथिला में धनुष-भंग, परशुराम मानमर्दन आदि ऐसे प्रसंग हैं जो राम की शक्ति के परिचायक हैं। रावण जैसे कूटनीतिज्ञ और पराक्रमी राजा का वध करना राम के द्वारा ही सम्भव था।

राम युद्धवीर तो थे ही साथ ही धर्मवीर भी थे। धर्म की रक्षा और अधर्म का नाश उनका ध्येय था। इसीलिये उन्हें युद्ध लड़ना पड़ा। अन्यथा उन्होंनें अपनी अपार शक्ति का दुरुपयोग कहीं किसी भी अवसर पर नहीं किया। उनमें नीति-नैपुण्य और रणचातुर्य कूट-कूट कर भरा था। वह शारीरिक और आत्मिक दोनों दृष्टियों से पूर्ण योद्धा थे।

राम के चरित्र को जिस पक्ष पर भारतीय जनता वर्षों से गर्व करती आ रही है वह है— उनका आदर्श रूप। वह आदर्श पुत्र हैं, आदर्श पति, आदर्श भाई, आदर्श सखा, आदर्श शिष्य और आदर्श राजा। पिता की आज्ञा का पालन करना उनका परम कर्त्तव्य था। इसीलिये शैशव में ही उन्हें विश्वामित्र के साथ वन जाना पड़ा। पुत्रत्व के आदर्श की पराकाष्ठा कैकेयी की वर-याचना के समय द्रष्टव्य है। जो कल राजा होने वाले थे आज वह प्रवासी हो गये, पर राम ने सब सहर्ष स्वीकार किया। क्योंकि उनकी यही धारणा रही है:—

सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी। जो पितु मातु वचन अनुरागी॥[१]

यही कारण था कि चौदह वर्षों के वन के जीवन में उन्हें राज्य-भोगेच्छा कभी नहीं हुई। भ्रातृत्व की पराकाष्ठा भरत और लक्ष्मण के सम्बन्धों में मिलती है। भरत उन्हें प्राणों के समान प्रिय हैं। भरत से बढ़कर तो सारे ब्रह्माण्ड में दूसरा कोई नहीं। वह स्वयं कहते हैं:—

सुनहु लखन भल भरत सरीखा। विधि प्रपंच यहुं सुना न दीखा॥
लखन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुवन्धु नहिं भरत समाना॥[२]

भरत के प्रति राम का ऐसा प्रेम देखकर ही तो कैकेयी तक ने उनकी प्रशंसा की थी। लक्ष्मण भी राम को कम प्रिय नहीं और फिर लक्ष्मण को तो उनका सामीप्य लाभ भी अधिक मिला था। कैशोर्य में ही अपनी नव विवाहिता पत्नी को छोड़कर राम के साथ वन जाने को उद्यत हुआ था उसके मूल में राम का अनुज के प्रति प्रेम भाव ही प्रमुख था। लक्ष्मण को उन्होंने हमेशा हृदय से ही लगाये रखा। लक्ष्मण-मूर्छा प्रसंग में राम का लक्ष्मण के प्रति प्रेम-भाव देखते ही बनता

---

१. रामचरित मानस, अयोध्या कांड ४१/४।

२. रामचरित मानस अयोध्या कांड २३१/४।

है। पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर राम इतना दुःखी न हुए थे जितना लक्ष्मण को मूर्छित देखकर। यहां उनका भ्रातृ-हृदय कराह उठा था। उन्हें तब लक्ष्मण की तुलना में सृष्टि के सभी सम्बन्ध व्यर्थ लगने लगे थे:—

सुत तिय नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा।।
अस बिचारि जियं जागहु ताता। मिलइ न जगत सहोदर भ्राता।।
जो जनतेउं बन बन्धु बिछोहू। पिता बचन मनतेउं नहि ओहू।।[1]

राम आदर्श शिष्य हैं। गुरुओं के प्रति उनकी विनय और श्रद्धा 'मानस' के अनेक प्रसंगों में देखी जा सकती है। वनस्थल में हो या राजमहल में गुरुजनों के प्रति राम की श्रद्धा कम नहीं हुई। कैसी भी स्थिति में क्यों न हों, राम ने गुरुओं को सदैव आगे बढ़कर ही भेंटा है। यही कारण है कि वशिष्ठ जैसी विभूतियां भी राम के प्रति प्रेम-भाव से विभोर रही हैं:—

कहत राम गुन सील सुनाऊ। सजल नयन प्रलकेउ मुनिराऊ।।[2]
सत्यसंध पालक श्रुति सेतू। राम जनम जग मंगल हेतू।।[3]

गुरु विश्वामित्र भी राम की श्रद्धा देखकर प्रभावित हुए थे। राम से बढ़कर आज्ञाकारी शिष्य और कौन हो सकता था जो उनके लिये राक्षसों का वध करता। तभी तो विश्वामित्र ने कहा था:—

रघुकुल मनि दसरथ के जाए। मम हित लगि नरेस पठाए।।[4]
राम लखनु दोउ बंधुवर रूप सील बल धाम।
राखेउ सब साखि जगु जिते असुर संग्राम।।

मित्रत्व का आदर्श विभीषण और सुग्रीव के साथ निभाये गये सम्बन्धों में मिलता है। मित्रता के आदश का निर्वाह करने लिये ही राम ने बालि को मारा था। राम की मित्रता की छाया में आश्रय लेकर ही विभीषण की सुरक्षा बनी रही थी। इस प्रकार राम ने मित्रों के साथ की हुई प्रतिज्ञाओं को उचित रीति से निभाया है।

---

१. वही लंकाकांड ६१/३–४।
२. रामचरित मानस, अयोध्या कांड, १७१/–३।
३. वही २५२/–२।
४. वही बालकांड २१६/–४।
५. वही २१६।

आदर्श राजा के रूप में राम सदैव अनुकरणीय रहेंगे। राम के इसी रूप ने रामराज्य को धर्मराज्य की संज्ञा प्रदान की। उनका राज्य सब प्रकार के रोगों से रहित था, सर्वत्र शांति थी, सब लोग अपने-अपने वर्ण और आश्रम के अनुकूल धर्म में प्रवृत्त थे। तुलसी ने लिखा है:—

रामराज बैठे त्रैलोका। हरषित भए गए सब सोका ।।*

बरनाश्रम निज-निज धरम निरत वेद पथ लोग।
चलहि सदा पावहिं सुखहि न भय सोक न रोग ।।*

प्रकृति भी नियमानुकूल क्रियाएं करती थी। नदियां श्रेष्ठ और सुखप्रद जल बहातीं, पर्वत मणियों की खानें प्रदान करते, सूर्य आवश्यकतानुसार ही ताप देता। जिस राज्य में स्वयं राम राजा थे उसकी सुख सम्पत्ति का क्या कहना:—

रमानाथ जहं राजा सो पुर बरनि की जाई।
अनिमादिक सुख सम्पदा रही अवध सब छाई ।।

मानवीय सम्बन्धों का आदर्श राम में इस तरह आकर मिल गया था कि राम 'पुरुषोत्तम' हो गये थे। इसके अतिरिक्त राम के सहज-सरल व्यक्तित्व में अक्रोध, क्षमा, सहनशीलना, अनासक्ति आदि ऐसे गुण हैं जिनका व्यावहारिक रूप 'मानस' में स्थान-स्थान पर मिलता है। राम भक्त-वत्सल और शरणागत-पालक हैं। उनकी शरण में आया हुआ शत्रु मित्र एक समान है। लौकिक दृष्टि से जयन्त, सुग्रीव और विभीषण ने जो सुरक्षा उनके आश्रय में पाई है, वह तो गौरवशाली प्रकरण है ही, पर अलौकिक दृष्टि में भी मोक्षलाभ के लिये प्रत्येक व्यक्ति को उन्हीं की शरण में जाना पड़ता है।

अन्त में यही कहना है कि राम के चरित्र में ऐसे अनेक गुण हैं जिनका वर्णन करना कठिन है। तुलसी के राम तो साक्षात अवतार हैं उनके गुणों का बखान तो ऋषि मुनि भी नहीं कर पाते। पर इतना तो अवश्य कहना पड़ेगा कि तुलसी ने राम के व्यक्तित्व के सूक्ष्म से सूक्ष्म तन्तु को भी जिस भव्य और दिव्य रूप में अंकित किया है, उस पर कोई भी जाति गर्व कर सकती है।

---

१. रामचरित मानस, उत्तर कांड २०/–४।
२. वही २०।

तुलसी काव्य में अलंकार

--श्री सुरेन्द्र कोहली

डा० शंभुनाथ सिंह 'मानस' में प्रयुक्त अलंकारों के विषय में लिखते है–'मानस की अलंकार योजना का उद्देश्य है अर्थ को सुन्दर ढंग से अभिव्यक्त करना, भावों के सौन्दर्य में वृद्धि करना और सूक्ष्म गुणों, अनुभूतियों और क्रियाओं को मूर्त्त रूप में उपस्थित करके उन्हें सहज बोधगम्य बनाना। इसलिए मानस में अलँकार रमणीयता की वृद्धि करते हैं उसके भार नहीं बल्कि सौन्दर्य के वाहन या साधन हैं।'[1] गोस्वामी जी ने अपने काव्य में कहीं भी स्वाभाविकता का अपहरण करने के लिए अलंकारों का प्रयोग नहीं किया अपितु उनके अलंकारों द्वारा स्वाभाविक सौन्दर्य ही विकसित हुआ है।

मुख्य रूप में अलंकार दो प्रकार के हैं शब्दालंकार और अर्थालंकार

शब्दालंकार शब्दालंकारों में चमत्कार शब्दाश्रित होता है। मुख्य मुख्य शब्दालंकार हैं—

अनुप्रास, यमक, पुनरुक्ति, वीप्सा, वक्रोक्ति तथा श्लेष। इन सभी अलंकारों को प्रयोग तुलसी के काव्य में खुल कर हुआ है। अनुप्रास की छठा दृष्टव्य है:—

फूलत, फलत, पल्लवत पलुहत बिटप बोलि अभिमत सुखदाई।
सरति-सरति सरसीरुह, सकुल सदन सवांरि रमा जनु छाई॥

इसमें फ, ल, त, स और र वर्णो की आवृति क्रमानुसार एक से अधिक बार होने के कारण वृत्यनुप्रास अलँकार है। अनुप्रास के चार और भी भेद हैं—छेकानुप्रास, श्रुत्यनुप्रास, लाटानुप्रास और अन्त्यानुप्रास। छेकानुप्रास, श्रुत्यनुप्रास और अन्त्यानुप्रास के उदाहरण तुलसी के काव्य के किसी भी पृष्ठ पर देखे जा सकते है। अनुप्रास अलंकार तुलसी का प्रिय अलंकार है "तुलसीदास जी अनुप्रास के बादशाह थे। अनूप्रास किस ढंग से लाना चाहिये, उनसे यह सीख कर यदि बहुत फुटकरिये कवियों ने अपने कवित सवैये लिखे होते तो उनमें भद्दापन अर्थ शून्यता न आने पातो।"[2]

---

१. शंभुनाथ सिंह, महाकाव्य स्वरूप विकास पृष्ठ, ५४८
२. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल गोस्वामी तुलसीदास पृ० १४३.

'यमक' अलंकार के उदाहरणों की भी तुलसी के काव्य में कमी नहीं है। यह अलंकार वहां पर होता है जहां एक शब्द भिन्न भिन्न अर्थों में कई बार प्रयोग में आता है। निम्नलिखित उदाहरण दर्शनीय है।

'भइ विदेह विदेह नेहवस देस दसा विसरायो।'

प्रस्तुत उदाहरण में 'विदेह' का दो बार प्रयोग शरीर रहित, और जनम के अर्थं में हुआ है।

'पुनरुक्ति प्रकाशं अलंकार में अभिव्यक्त भाव को और अधिक स्पष्ट करने के लिए एक शब्द का एक ही अर्थ में कई बार प्रयोग होता है। निम्नलिखित उदाहरण में राम की उपासना पर बल देने के लिये 'रामजपु' का तीन बार प्रयोग करके तुलसी ने 'पुनरुक्ति प्रकाश' अलंकार का प्रयोग किया है—

राम जपु ! राम जपु ! राम जपु !

पुनरुक्तवदाभास के उदाहरण तुलसी के काव्य में कम ही मिलते हैं। इस अलंकार में भिन्न आकार वाले समानार्थक शब्दों का प्रयोग होता है। इसमें केवल पुनरुक्ति की प्रतीति होती है, वास्तव में पुनरुक्ति नहीं होती। एक उदाहरण देखिये—

विधि केहि भांति धरों डर धीरा।

यहां पर विधि और भांति का अर्थ एक ही प्रतीत होता है वास्तव में इन दोनों का अर्थ भिन्न है।

विधि का अर्थ ब्रह्मा तथा भांति का अर्थ प्रकार हैं।

वीप्सा अलंकार, में एक शब्द का प्रयोग अनेक बार होता है, किन्तु इसमें भय घृणा, आदर आदि किसी भाव की व्यंजना होती है। जैसे—

'सिव, सिव ! होइ प्रसन्न करुदाया'

प्रस्तुत उदाहरण में 'सिव' शब्द की आवृति 'आदर के लिये हुई है।

श्लेष अलंकार में एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं और वे सभी अर्थं अपेक्षित होते हैं। जैसे—

'ब्रह्म पीयूष मधुर सीतल जो पै मन सो रस पावे।
तौ कत भुजगत रूप विषय कारन निसि वासर धावै।।'

यहां पर ब्रह्म शब्द के चार अर्थ हैं—वेद, ब्राह्मण ब्रह्मा और परमेश्वर।

वक्रोक्ति अलंकार में वक्ता किसी और अभिप्राय से किसी शब्द का प्रयोग करता है, परन्तु श्रोता उसका और ही अभिप्राय निकलता है। वक्रोक्ति के दो भेद हैं–श्लेप वक्रोक्ति और काकु वक्रोक्ति। काकु वक्रोक्ति का एक उदाहरण नीचे दिया जाता है।

'मैं सुकुमारि नाथ वन जोगू'

इसमें साधारण अर्थ तो यह है कि मैं सुकुमारि हूँ, आप वन के योग्य हैं। परन्तु कण्ठ ध्वनि ये यह अर्थ लिया जाता है कि यदि मैं सुकुमारि हूँ तो आप भी पहलवान नहीं है अर्थात् आप भी वन के योग्य नहीं हैं। इस प्रकार के अर्थ की प्रतीति कण्ठ ध्वनि में भेद के कारण ही हैं अतः यह काकु वक्रोक्ति है।

साम्य मूलक अर्थालंकार साम्य मूलक अलंकारों में उपमा रूपक और उत्प्रेक्षा तीन प्रधान अलंकार हैं। इन तीनों अलंकारों के प्रयोग में कवि अपना उपमान आप ही है। उपमा के प्रयोग में तो तुलसी ने कमाल ही कर दिया है जैसी असरदार उपमाह लिखने में गोस्वामी जी समर्थ हुये हैं वैसी अन्यान्य साहित्य के ग्रंथों में भी दुर्लभ हैं। उनके पात्रों की कुंजीं उनकी उपमा ही है।" संस्कृत के कवि कालिदास भी अपनी मार्मिक उपमाओं के लिये प्रसिद्ध हैं परन्तु तुलसीदास जी ने कालिदास को भी पीछे छोड़ दिया है। इसका कारण यह है कि तुलसी के उरसान और प्रतीक लोक जीवन से चुने होते हैं। इनकी उपमाओं में एक भी उपमा अभिव्यंजना से शून्य नहीं है। प्रत्येक में भावों के योग की आया है और जीवन के चरम आदर्श की तुषमा है। बी.सी. स्मिथ ने भी तुलसी की उपमाओं को कालिदास से श्रेष्ठ बताया है–

तुलसी जी के काव्य की कुछ उपमांह नीचे दी जाती हैं।

नील सरोरूह नील मनि नीलधर स्याम।
लाजहि तनु सोभा निरखि कोटि कोटि सतकाम॥

इसमें भगवात् के साकार सौंदर्य के वर्णन के लिये तीन तीन उपमानों से तुलना की गई है। यह काम तुलसी ही कर सकते थे।

इसी प्रकार सीता के सौन्दर्य वर्णन में कवि ने सीता को भगवान् की परमशक्ति मानते हुये साहित्यिक उपमानों तथा पौराणिक संकेतों के वर्णन में स्वाभाविकता तथा सरलता का समावेश किया है। देखिये––

सिय सोभा नहीं जाइ बखानी। जगदांबिका रुप गुन खानी॥
उपमा सकल मोहिं लघु लागीं। प्राकृत नारी अंग अनुरागी॥

---

* पं० चन्द्रावली पाण्डेय तुलसी पृष्ठ २८९

सिय वरनि तेई उपमा देई । कुकवि कहाइ अजसु को लेई ।।
जौं पटतरिभ तीय सम सीया । जग अस जुवति कहां कमनीया ।।
गिरा मुखर तन अरध भवानी । रति अति दुखित अतुनपति जानी ।।
विष बारुनी बंधु प्रिय जेही । कहिअ रमासम किमि बैंदेही ।।

इस प्रकार की उपमाओं से तुलसी का सारा काव्य भरा पड़ा है । पं० अयोध्यासिह 'उपाध्याय' के अनुसार 'रामचरित मानस' की कोई चौपाई भले ही बिना उपमा के मिल जाये, किन्तु उसका कोई पृष्ठ कठिनता से ऐसा मिलेगा, जिसमें किसी सुन्दर उपमा का प्रयोग न हो । उपमाएं साधारण नहीं, वे अमूल्य रत्नराशि हैं ।"[१]

उपमा की भांति रुपक और उत्प्रेक्षा अलंकारों की भी तुलसी के काव्य में कमी नहीं है । तुलसी के काव्य सागर में कहीं भी डुबकी लगाइये रत्न हाथ आ जायेंगे । रामचरित मानस का कोई काण्ड ऐसा नहीं जिसमें सुन्दर रूपक का प्रयोग नहीं किया गया हो । रामनरेश त्रिपाठी के अनुसार "रूपकां पर तुलसीदास का स्वाभाविक अनुराग दिखाई पड़ता है । रामचरित मानस में रूपकों का तांता सा लगा हुआ है । उसका कोई काण्ड ऐसा नहीं जिसमें तुलसीदास ने कोई न कोई नया रूपक न बांधा हो ।"[२] इसी बात को स्वीकार करते हुये डा० राममूर्ति त्रिपाठी ने लिखा है कि "गोस्वामी जी ने रूपक अलंकार पर अपना अनुयमेय अधिकार दिखाते हुये उनका प्रयोग अपनी सभी कृतियों में पग-पग पर किया है ।"[३] सांग रूपक अलंकार के प्रयोग में जितने सिद्धहस्त तुलसीदास थे उतना और कवि दिखाई नहीं देता । निम्नलिखित पंक्तियों में सांग रूपक का कितना सुन्दर निर्वाह हुआ है–

सुमति भूमि जल हृदय अगाधु, वेद पुरान उदधि घन साधु ।।
वरषहिं राम सुजस वर वारि, मधुर मनोहर मंगल कारि ।।

सन्त पुरुष का महत्व भक्त के लिये सर्वाधिक है । इस रूपक में उसे घन का रूप देखर राम के सुयश रुपी जल को सुलभ कराने वाला मुख्य साधन बताया है ।

निम्नलिखित सांग रूपक में सीता की नि.सहाय दशा का चित्रण करके कवि ने पाठक के हृदय को कितना प्रभावित किया है––

नाम पाहरु दिवस निसि न्यान तुम्हार कपाट ।
लोचन निजपद जंत्रित प्रात जांहि केहि वाट ।।

---

१ तुलसीदास की उपमाएं–माधुरी वर्ष २ खण्ड १ पृष्ठ ७४

२ राम नरेश त्रिपाठी तुलसी दास और उनकी कविता भागर पृ० ८६४

३ डा० राममूर्ति त्रिपाठी गोस्वामी तुलसीदास के मानस रूपकों का साहित्यिक विवेखन (मानस मयूख) पृ० १८३

इसी प्रकार के रूपकों में कवि ने अपना हृदय खोलकर रख दिया है। तभी हां डा० श्याम सुन्दर कहते हैं "गोस्वामी जी के रूपकों का गाम्भीर्य उनके हृय के संक्रामक गाम्भीर्य का द्योतक है।"[1]

कविता के विषय में अपनी मान्यता को सांग रूपक के माध्यम से कवि ने इस प्रकार स्पष्ट किया है—

हृदय-सिंधु मति सीप समाना। स्वाति सारदा कहत सुजाना ।।
जो वरसै वरवारि विचारू। होंहि कवित्त मुक्तामणि चारू ।।

साहृश्य सूलक अलंकारों में उत्प्रेक्षा का भी बहुत महत्व है। 'गीतावली' में इस अलंकार का अधिक प्रयोग मिलता है। एक उदाहरण नीचे दिया जाता है—

बालकेलि बातवस झलकि झलमलत,
सोभा की दीयटि मानो रूप दीप दियो है।

इसमें बालक राम की शोभा का वर्णन करने के लिये उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग मिलता हैं। रामचन्द्र जी ऐसे जान पड़ते हैं मानो शोभा की दीवट पर रूपमय बालकेलि रूप वायु के झकोरों से झिलमिला रहा हो।

'तुलसीदास जी उत्प्रेक्षा अलंकार की योजना में अपनी कल्पना की जो उड़ान भरते हैं उनकी सफलता इसी में है कि इसके सहारे वह ऐसे ही अप्रस्तुत को लायें कि प्रस्तुत का बिम्ब भाव ही झलके।"[2]

क्रिया के आधार पर अप्रस्तुत का प्रस्तुत से साम्य दिखलाने वाला निम्नलिखित उदाहरण देखिये—

नींदउ वदन सोह सुठि लोना। मनहुं सांझ सरसीरुह सोना इसी प्रकार नीचे के उदाहरण में गुण के आधार पर प्रस्तुत का अप्रस्तुत से साम्य दिखलाया गया है—

निज पद जलज विलोकि, सोकरत तयननि वारि न रहत एक छन।
मनहुं नील नीरज ससि संभव रवि वियोग दोउ स्त्रवत सुधाकन ।।

'संदेह' अलंकार भी साहृश्य मूलक अलंकारों की कोटि में आता है। 'गीतावली' का एक उदाहरण अवलोकनीय है—

ललित सकल अंग, तनु धरै कै अनंग।
नैननि को फल कैधौं, सिय को सुकृत सारू।

---

१ गोस्वामी जी के अलंकार विधान में धर्मनीति मानसाक पृ० ११५
२ तुलसीदास और उनका युग—पृ० २३४

यहां राम की सुन्दरता को नेत्रों का फल और सुकृतों का सार, कह कर मूर्त प्रस्तुत के लिये अमूर्त्त अप्रस्तुत का प्रयोग संदेह अलंकार द्वारा हुआ है ।

विरोध मूलक अलंकारों में तुलसीदास जी के काव्य में विरोधाभास और असंगति के उदाहरण ही अधिक मिलते हैं । इन दोनों अलंकारों का एक एक उदाहरण नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है ।

गरल सुधा रिपु कराई मिताई । गोपद सिंधु अनल सितलाई ।
गरुअ सुमेरू रेनु समता ही । राम कृपा करि चितवहिं जाही ।

प्रस्तुत उदाहरण में गरल और सुधा, गोपद सिंधु और अनल सितलाई में विरोध का आभास होता है—वास्तव में विरोध नहीं है ।

इसी प्रकार कारण और कार्य की प्रतिकूलता का वर्णन कर नीचे की पंक्तियों में असंगति अलंकार का प्रयोग मिलता है—

'हृदय घाव मेरे, वीर रघुवीर ।

श्रृंखला मूलक अलंकारों में कारणमाला, सार और एकावली अलंकार आते हैं । कारण-माला में एक वस्तु दूसरी वस्तु का कारण बनती है और आगे कार्य उत्तरोत्तर कारण बनता जाता है । जैसे—

'पाट कीट ते होइ तेहि ते पाटम्बर रुचिर ।'

'सार' अलंकार में उत्तरोत्तर प्रथम वस्तु से दूसरी वस्तु में उत्कर्ष अथवा अपकर्ष होता है । यथा—

'नेकु बिलोकि धों रघुवरनि
... ...
चरित निरखत विबुध तुलसी ओट दे जलधरनि ।
चहत सुर सुरपति भयो- सुरपति भयो चहे तरनि ।'

एकावली अलंकार का प्रयोग तुलसी के काव्य में नहीं के बराबर मिलता है ।

न्यायमूलक वर्ग के अलंकारों में काव्यलिंग, तद्गुण तथा यथासंख्या आदि अलंकार आते हैं ।

'काव्यलिंग' अलंकार में समर्थन करने योग्य बात का समर्थन होता है । जैसे —

'श्याम गौर किमि कहौं बखानि । गिरा अनयन नयन बिनु बानी' ।

तद्गुण अलंकार वहाँ पर होता है जहां कोई वस्तु समीप की वस्तु के गुण को ग्रहण कर ले । जैसे—

'राजत नरन जनु कमलदलनि पर अरुन प्रभा रंजित तुषार कण' ।

'यथासंख्या' अलंकार में जिस क्रम से पदार्थ का वर्णन हो, उसी क्रम से उससे सम्बन्ध रखने वाले पदार्थों का वर्णन होता है । यथा—

तुलसी भनिति, सबरी प्रनति रघुवर प्रकृति करुनामई ।
गावत, सुनत, समुझत, भगति हिय होइ प्रभु पद नित नई ।

कारण कार्य सम्बन्ध मूलक अलंकारों के अन्तर्गत विभावना और अतिशयोक्ति आदि अलंकार आते हैं ।

विभावना अलंकार में कारण के बिना कार्य अथवा अपूर्ण कारण से ही कार्य हो जाता हैं । जैसे—

'गुरू ग्रह सढ़न गये रघुराई, अल्पकाल सब विद्या आई ।'

यहाँ थोड़े समय तक पढ़ने पर भी (पढ़ने का कारण अपूर्ण होने पर भी) पूर्ण विद्या की प्राप्ति (कार्य) हो गया है ।

'अतिशयोक्ति' अलंकार में वर्णनीय वस्तु की बढ़ा-चढ़ा कर प्रशंसा की जाती है । इसके सात भेद हैं— रूपकातिश्योक्ति का एक उदाहरण देखिये—

'निरमल अति पीत चेल, दामिनि जनु जलद नील ।
राखी जनु सोभा हित विपुल विधि निहौरी ।

यहां पर 'जलद नील' में रूपकातिशयोक्ति अलंकार है ।

निषेध मूलक अलंकारों के वर्ग के अन्तगत अपहुति, विनोक्ति, व्यतिरक आदि अलंकार आते हैं ।

अपहुति अलंकार में उपमेय का निषेध कर उसमें उपमान की स्थापना की जाती है । इस अलंकार के बहुत से भेद हैं । कैतवापन्हुपि का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

'सुनि पितु वचन चरन गहे रघुपति, भूप अंक भरि लीन्हे ।
अजहुँ अवनि विहरत दरार मिस, सो अवसर सुधि कीन्हे ।

इन पंक्तियों में 'मिस' शब्द के द्वारा सत्य वस्तु (उपमेय) का निषेध करके असत्य (उपमान) की स्थापना होने के कारण कैतवापन्हुति अलंकार है ।

'विनोक्ति' अलंकार में प्रस्तुत वस्तु किसी के बिना हीन दिखाई देती है । जैसे—

'जिय बिनु देह नदी बिनु बारि । तैसेहि नाथ पुरुष बिनु नारि ।'

इसमें जीवात्मा के बिना देह, जल के बिना नदी और पुरुष के बिना नारी को हीन कहा गया है ।

'व्यतिरेक' अलंकार में उपमान की अपेक्षा उपमेय में आधिक्य दिखाया जाता है । जैसे—

'सरद सरीजहू ते सुन्दर चरन हैं ।'

यहां पर रामचन्द्र के चरण उपमेय को कमल (उपमान) से श्रेष्ठ मानकर व्यतिरेक अलंकार का प्रयोग मिलता है ।

गूढ़ार्थ प्रतीति मूलक अलंकारों में परिकर, परिकरांकुर, स्वभावोक्ति, समासोक्ति, मुद्रा, व्याज निंदा और व्याज स्तुति आदि अलंकारों का समावेश है । विस्तार में न जाते हुए इन अलंकारों का एक उदाहरण नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है—

परिकर—देहु उत्तर अनु कहहु की नाहीं,
सत्यसन्ध तुम रघुकुल माहीं ।

परिकरांकुर—'तुलसीदास भव व्याल-ग्रसित तव सरन उरगरिपुगामी'

स्वभावोक्ति— भजन करत बोल जब राजा, नहिं आवत तजि बाल समाजा

× × × ×

भाजि चले किलकत मुख दधि ओदन लपटाई ।'

समासोक्ति—'लोचन मग रामहि उर आनी । दीन्हे पलक कपाट सयानी'

व्याजस्तुति—'नारद सिख ये सुनहि नर नारो । अवसि होहि तजि भवन भिखारी ।'

व्याज निन्दा—'राम साधु तुम साधु सुजाना, राम मातु भलि मैं पहिचाना ।

तुलसी के काव्य में कई स्थानों पर अलंकारों के श्लिष्ट प्रयोग भी मिलते हैं। निम्नलिखित पंक्तियों में रामकथ: की व्याख्या करता हुआ कवि रूपक, उपमा, उल्लेख और व्यतिरेक अलंकारों की संश्लिष्ट योजना प्रस्तुत करता है—

'रामकथा कलि पनंग भरनी, पुनि विवेक पावक कहुं अरनी ।
रामकथा कलि कामद गाई, सुजन सजीवनि भूरि सुहाई ।'
सोई वसुधातल सुधा तरंगिनि, भय भंजनि भ्रम भेक, भुअंगिनि ।

इसी प्रकार निम्नलिखित उदाहरण में तुलसीदास जी ने स्मरण, उत्प्रेक्षा और उपमा के सन्निवेश से अपनो कवित्व शक्ति का परिचय दिया है—

'सुमरि सीय नारद वचन उपजी प्रीत पुनीत ।
चकित विलोकति सकल दिसि जनु सिसुमृगी सभीत ।।

श्लिष्ट अलंकारों के अतिरिक्त तुलसीदास के काव्य में पाश्चात्य अलंकारों के भी दर्शन होते हैं—

मानवीकरण अलंकार का एक उदाहरण लीजिये—

'सीदत साधु, साधुता सोचति, खल विलसत हुलसति ।

इसमें 'साधुता' 'सोचति' और 'खलई' विलसति' कहकर साधुता और खलई (दुष्टता) में सजीवता मानी गई है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसीदास जी के काव्य में हर प्रकार के अलंकारों का प्रयोग मिलता है, परन्तु ये सब अलंकार उनके काव्य में स्वाभाविक रूप में ही आये हैं। केशव की भांति उन्होंने अलंकारों को ठूंस-ठूंस कर काव्य का सौन्दर्य नष्ट नहीं किया। कहीं भी इनके काव्य में भाव अलंकारों के नीचे नहीं दबे हुए हैं। अपितु वे भावों की व्यजंना में सहायक हुए हैं। डा० रामकुमार वर्मा ने ठीक ही कहा है कि "सरल स्वाभाविक और विग्धतापूर्ण वर्णन तुलसी की शैली की विशेषता है पर तुलसीदास जी की प्रतिभा इतनी उच्चकोटि की है कि उसमें अलंकार स्वभाविक रूप से चले आते हैं। अलंकारों के स्थान के लिये भावों की अवहेलना नहीं करनी पड़ती। उसका कारण यह है कि तुलसीदास का भाव विश्लेषण इतना अधिक मनोवैज्ञानिक है कि उसकी भाव तीव्रता या सौंदर्य वर्णन के लिये अलंकार को आवश्यकता नहीं रह जाती, पर तुलसीदास एक कुशल कलाकार की भांति अलंकार के रत्नों को सरलता से उठाकर काव्य में रख देते हैं ।

◇✱◇

"आराधना"

पृथ्वी नाथ कौल "सांथिल"

सतुव लय

चान्य लय कुम ठीय मैं लय गंन्दारवतम्,
छांफ कुम मुहु तय दुयी हुज़ कासतम।
कुरवत्रिलोकी नाथ नन [illegible] रछान,
'सॉथिलस' दृष्टी शोबुम न्यूम आवतम॥

ॐ श्री गणेशाये नमः ।
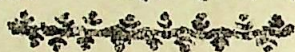
सैंदि दाता छुख वैंगनु हरिरो लो,
आदि दीवा बोज़ु ज़ारु पारो लो ।
महा गणीशा मवुसरु दिसु अति तारे॥
आदि दीवा बोज़ु ज़ारु पारो लो ॥१॥
ईशरु सुन्दि पोंतु एकदन्तु तारे,
गज़मोखु छुख सख्वारो लो ।
गुल्य गंन्डिथ मेच्यनय चैय नमस्कारे॥
आदि दीवा बोज़ु ज़ारु पारो लो ॥२॥
च़ुय छुख बब मांज चुय तरफदारो,
च़ुय सोन पालनहारो लो ।
च़ेय वरांय शुर्य क्या पानु मोखलारे ॥
आदि दीवा बोज़ु ज़ारु पारो लो ॥३॥
स्यदु पीठ चांनी गणपत यारो,
भक्तजन करतु वोदारो लो ।
पाप श्राप कास छुख तरावनहारो ॥आदि दीवा—

मायि हुन्द् साज़ भंक्ती सेतारो,
गोडन्युक छुंय अधिकारो लो।
जग तुक छुंय प्यठ दार् मदारो॥ आदि दीवा...
आदीनन हुन्दि बडि पंरव्यदारो,
हा दयावानु राज़दारो लो।
गोणुनुय चान्यन कति शुमारो॥ आदिदीवा...
कोर्कर्म वतनु आयि क्रोठि व्यवहारो,
समुयन कंय वरफ़तारो लो।
पादन ज़ुव वन्दय करतु नोपकारो॥०॥ आदि दीवा...
"सांयिल" छेकि प्यठ कुस करान ज़ारो,
गोब गोस समसार्य बारो लो।
नरिव डरिव रोज़ कुस बोड नाबकारो॥
आदि दीवा बोज़ु ज़ार् पारो लो॥०॥

बन्द् कुस कुस म्यो बोड रछपाल छुय,
कुस दया सागर छु दीनदयाल छुयँ।
चानि दर्शनु छलि ग्रहन ज़न मे छुंकुमस,
"सांयिलस" बोज़ान कुस ना हाल छुय॥०॥

ॐ

कुस दज़ान बं नरवुकि नार् लो लो ।
महा गणीशा करसां म्योन चार् लो लो॥
ज़ार बोज़ वेगनु हतार् लो लो ॥ महा....
महा गणीशा करसां म्योन चार् लोलो ।

कुस अनाथ कर् क्याह बनु कस ज़ार,
रोक्षपाल म्योन कुय सीटि पैय बार ।
हाल यैमि चाल कूत अमार् लो लो॥०॥
संसार् ज़ालस मंज़ गोस बंद ,
मुह मायायि यी कोरनम फंद ।
अवसर् क्थथ् तर् तार् लो लो॥०॥
कुस यिवान जेर् यैलि कुस छटान बाख,
टोंप कडान कुस तय कुस अथान लाख।
नेत्र अंशिसुय मे लंज दार् लो लो॥०॥
कुमनु कांह ददिल तु गिल् कर्हस,
क्याह कुस मे गुदस्योमुत बं पर्हस ।
ज़ानि रोस यियि कस आर् लोलो ॥०॥

क्रौंजिलि पोग सारि गोम कर् क्याह् बो,
मंदिन्यन श्याम गोम हारस मे पोह।
वन् कस वनुनस नु वार् लो लो ॥७॥
आश छुम मे केवल आदि दीवु चान्य,
गोश थवतु वार् बेज़ व्यन्ती म्यान्य।
जिगुरस गंयि मे पार् पार् लोलो॥८॥
थव पनुन सायि मे छुस बं "सांयिल";
पनुनि सुमरनि कुन कर मे मांयिल।
मोख हाव नतु गछ़् मार् लो लो ॥९॥
महा गंणीशा करसां म्योन चार् लोलो।

दुयस कुन !

युस मशी चेय, वनतु कस पेयि ज़ांहसु याद,
यस नु छुख याद, कस सना करि बेयिस याद।
छुय अगर रछ़् खंड चे श्रेह मे ति याद थाव,
छुस बं सांयिल छुख मे विज़ि विज़ि अख नु याद ॥१॥

जय श्री कृष्ण !

मोरलीदर् क्याह मोरली अथि छय,
पीताम्बर पट तु सोंन्य माल् हटि छुय।
वुठ चांन्य बिम्ब् फल तु व्रज़लुकन मोल कुय,
रूफ़ चोन सोन्दर तु करवुन सोख छु य।
छी नेथुर पद्म् वंथुर तु पाद पम्पोश॥
होश कति "सांयिलस" सु करि तोता॥०॥

पम्पोशि — मालुय ....

दर्शन् दोख चंल्य त्रिभवन् लालय,
पम्पोशि मालय त्रावय नांल्य॥
[illegible] भावनायि रंत्न दीप ज़ालय।
पम्पोशि मालय त्रावय नांल्य॥०॥
दीवकी हुन्दि दाठि वासुदीवनि लालय,
जसदायि नन्द् बावन वंरुय मालय।
राधायि लोगुनख शेरि गुपाल्य॥
पम्पोशि मालय त्रावय नांल्य॥०॥

ज़ुगि हुन्दि रछिपाल् कंसुनि कालय,
ज़ुलमुक यैति तति गोलुथ न्याल।
संतन्यन हुन्द हाल् अंहवालय॥
परमपोशि मालय ञावय नाल्य॥७॥
बिन्द्राबनुके कृष्ण गुपालय,
काम् दीनु मोरली छै कन दारान।
गूपियि छ्य बरान खीर् खंडु थालय॥
परमपोशि मालय ञावय नाल्य॥७॥
सक्षस ग्वालुबुनि दीनु दयालय,
काम काम दूथ ग्रंथि प्राण हारान।
पूतनायि दाम् अकि कोरथ कुसहालय॥
परमपोशि मालय ञावय नाल्य॥७॥
रासा बिन्दुबुनि हा नन्दुलालय,
अर्जुन दीविने रथु बानय।
टोठ अज़ "सांयिलस" बनतु कृपालय॥
परमपोशि मालय ञावय नाल्य॥७॥

●

ॐ

भंक्तयन हुन्दि टाठि रक्षपालु लो लो,
दीवुकी हुन्दि बालु गूपालु लो लो।
मनु मथुरायि मार सां कालु लो लो॥
दीवकी हुन्दि बालु गूपालु लो लो ॥०॥
मोर मुकटस भंक्यनय जय जयकार,
पाप गालवुनि सोनुय छुय नमस्कार,
दित दर्शुन मत दित डालु लो लो ॥०॥ दीवकी–
राध छन गंछ़ चांनी नामु स्मरण,
वैंयि करुहय तन मन चैंय अर्पन।
अद राज़हव अंस्य ति खोशहालु लो लो ॥०॥–
पोंछ पांरी लगुहोय पादि कमलुन,
शामु सोन्दरो छांडुहोथ ब्रिन्द्रावन।
नौल्य त्रावुहोय मोनि फल्य मालु लो लो ॥०॥–
यैलि यैलि ज़ांह अधर्म छु कोहनु फांफलान
तैलि तैलि छुख पृथ्वी बोर वालान।
छुख चु आसुवुन त्रज़गथ पालु लो लो ॥०॥—

बोज़ व्यन्ती "सांयिलस" करत अनुग्रह,
हुसनु समसांर्य मायायि किन्य नेंद्रे नेंह।
हावतस मोख्न चलुनस ज़ालु लोले॥
दीवु की हन्दि बालु गुपालु लोले॥७॥

फ़्यंयाद बोज़्यमना !

मनु सारि लायस बं नादु, फ़्यंयाद बोज़्यमना
लोलु पुछि प्रेंयमुक नाद, फ़्यंयाद बोज़्यमना
चञ्चल तोरुग म्योन मन, वैराग्य छुस ग्रोंमरन
मायायि हुंदु मुहु साद, फ़्यंयाद बोज़्यमना
हा ज़ीवु शम दम रेन, भक्ति वति पोंदपोंद जेन।
संतोषि डोरि दितु काद, फ़्यंयाद बोज़्यमना
रछि रछि व्यांपिथ सुय, हनि हनि बांतिथ सुय
सुय होन्ज़ सुय छुम राद, फ़्यंयाद बोज़्यमना
सूकु कैंह्या मो कर, क्षणु क्षणु दयिनाव स्वर
सतसंग तु सत सम्बाद, फ़्यंयाद बोज़्यमना

चोन म्योन पर तु पनुन, हुकआसि पज़ि ब्य दुन
अदु ज़ात गछु आज़ाद, फ़ंयं याद बोज़्य मना
ज़ुच़ु तंस्य निश छि नेरन, बेयि तंस्य कुन छि फेरन
अतु गथ च्योन छुस म्याद, फ़ंर्यं याद बोज़्य मना
पूरु छिस तोलु आगर, पानु छुय दया सागर
सुय 'द्रुव' सुय 'प्रह्लाद,' फ़ंर्यं याद बोज़्य मना
यस कृपा करि बरि सोख, पोत खोरि वथ ह्यन दोख
वोलु सिथ मन गछि शाद, फ़ंर्यं याद बोज़्य मना
समसारं हावु बावाह, भवु सरु रंगु नावाह,
हेमु खूर ॐ बे दाद, फ़ंर्यं याद बोज़्य मना
छलु छिद्रे दितु लथ, शोदि बोदि यियी अथु वथ
पोनि संच़ दूर चलि म्याद, फ़ंर्यं याद बोज़्य मना,
राम सुय श्याम सोन्दर, ज्ञान ध्यान सुय ईशर,
रामु गोण मोरली वाद, फ़ंर्यं याद बोज़्य मना
सीदन हुंद च़्य सार, भक्तन च़ु बखशनहार
पोशास मज़ं च़ं अंहलाद, फ़ंर्यं याद बोज़्य मना
होव होवकंर्य ज़िनु ज़ाह, ठानु रोस छाव यिथिमा,
"सांयिलु" कथ धंव याद, फ़ंर्यं याद बोज़्य मना

कृष्ण जन्म

हनि हनि माह प्यव गटि अन्धुर हय।
श्यामु सौन्दर हय ज़न्मस आव ॥
जाय अंस्य कर होस मनु मंदर हय,
श्यामु सौन्दर हय ज़न्मस आव ॥०॥
दीवकी कांद खानस मंज़ थनु प्यव,
वासुदीवस दोंपुन गूकल निस ।
हंगु मंगु वंथ्य गंयि दारि तु बर हय ॥०॥ श्याम...
वासदीवन तुल जमनायि प्यठ बीथ,
पोन्य खोत पादन मीठ्य दितिहेस ।
कोली नागस वंछ थर थर हय ॥०॥ श्यामु....
नन्द गुर तु जसुदा गंयि हर्षस तय,
तीजुँ सौंस बालुक खोनि ललवुन ।
खीरु खंडु बंधिहस थाल दुदर हय ॥०॥ श्यामु...
गूर्य बेयि गूर्य बालक तु गूर्यबायें,
आये मुबारकस जसुदाये ।
गूपियि दवि आयि नन्दुनुय गर हय ॥०॥...
बालुकन बाशि करि कोन जसुदाये,
रंगु मंज़ुलिस रोनि जर मांविव ।
वोंगु रुनि पूर्व लेज मौयि बर मरु ह य ॥०॥ श्यामु

"सांबिल" वनुनि लौग लोलु लीलाये,
मंकुथव लनु मनु थंव्यतव ध्यान।
मन मोहन असि कासि अरसरु हय॥
शामु सोन्दर हय ज़न्मस आव॥०॥

जसदा नन्दुनय मंव्यनय जय!

दोरव दौल शोख लौब चानि दर्शनय,
जसदा नन्दुनय मंव्यनय जय।
सोरुय त्रिभवन लौग हर्षणय॥
जसदा नन्दुनय मंव्यनय जय॥०॥
मद् दैत चाने मोख, प्रफुलनय,
मेशवुन्य भवनन प्यव प्रकाश।
ती वुछ सिर्यन सु छु मंदुछनय॥०॥जसदा...
प्रेयम चानि दीवता आयि वोलसनय,
गोकल वुछनि आयि बालु लीला।
स्वांगु प्याठु तिम वोरय बिन्द्राबनय॥०॥....
कानुदीनु बन्सरी नाद वोज़नय,
ती वुछिथ गूपियव बन्धन त्रोव।
राधा कृष्ण ती रास खेलनय॥०॥ जसदा...

जमनायि गुपियि तन नावनय,
 वंस्त्र नीमित्व बालु बन्दुरन ।
कांसयख मोख मंदछ न्यरन्ज़नय ॥०॥......
अकि अकि लय तं क्य कों राक्षसनय,
 पूतनायि कंसस कोरुन समहार ।
विकि प्यठ खोरुन गोवरदनयं ॥०॥......
वीद तय शास्त्र द्वनु वरननय,
 कलि अनि "साँयिल" त्युथ गाछुआर ।
युथ करि चांनी गुण वंननय ॥
 जसदा नन्दुनय मंव्यनय जय ॥०॥

श्यामुसोन्दर लोलि ललुवोनुये !

शामु सोन्दर लोलि ललुवोनुये,
राधा कृष्ण नाद बोज़ि सोनुये।
अज़ हय कुन्ज़नानि सुय कसैलोनुये।
राधा कृष्ण नाद बोज़ि सोनुये ॥०॥
सास सिंयिय हुव मोख ताबान छुसना,
मोर मुकटस मोरन्तु प्रज़लान छुसना।
श्यामु रूफु असि कामुदीव ज़ोनुये ॥०॥

माथि हवु आस गूपियि नादलायन,
गर्यबालकन वनु वनु नय वायान।
नन्दु जसदायि वैन्दुनस ओनुये ॥०॥ राधा...
धन्य नी नी बालु कुय फुटरावान,
दीद गलि गलि गूर्य बालकन हु चावान।
कृपु करिथ सुय पिन्दु वोनुये ॥०॥......
गोकलु प्यठ मथुरायि द्राव गूपाल,
गर्यबालकन तु दांसियन गव बेहाल।
मनमोहन गोकुन मशरोनुये ॥०॥........
बालु लीला क्याह कर थनि पूरनु,
किथि प्यठ तम्य खोलुय गवर्धन।
अर्जुन दीव तमी हेछनो वोनुये ॥०॥
राधा कृष्ण नाद बोज़ि सोनुये ॥

लोलुक नाद

नाद बोज़न वालि बोज़ुम लोलु नाद,
पाद रठ़हय वोन्य मे कासुम सोर ब्याद।
वोन दा मन रोट मे वांसिल वार बोज़,
कुस बं सांयित "हालसुय म्यांनिस दि
दाद॥

"श्री कृष्णु गोविन्द !"

इश्कन्य चंन्द्रम् कु ज़ोतान गालवुन पाप,
अछेज़ान मारि पेचान कासवुन्य शाप।
अथुव मोरली हुं शांन्सी बोंगरावन,
रंगम मंज़ फ्वलाम्, रंग मोखती कुदावान।
ओंकन छुंअ लोल मंसती हाथ चलान होश।।
मोखि कति वाति थांद क्वर् बे सोता ।।१०।।

मछि राधायि बोज़ फ़र्ययाद कृष्णा !

मनु तारि व लायय नाद कृष्णा,
मछि राधायि बोज़ फ़र्ययाद कृष्णा।
मोखि हावतम मन गछि शाद कृष्णा।
मछि राधायि बोज़ फ़र्ययाद कृष्णा ।।०।।
बिन्द्रावनु वनु वनुनुय बे छारिथ,
गूकल क्योंहो मथरायि किन्य बे गारिथ।
वाय बैंयि वाय बनसंरी नाद कृष्णा।।
मछि राधायि बोज़ फ़र्ययाद कृष्णा ।।०।।

मनमोहनु कौंत कुन नीथन ख़्वास,
वैराधा यंच़ कंरथस बे बे हास।
अंग लोसम तु लूसिम पाद कृष्णा ॥०॥
कोनु हुख च्युय भंक्त्यन कायान शाप,
दर्शनु चानि च़लि हे मैंति सन्ताप।
अदु करु हो बे सत चमत्कार कृष्णा ॥०॥
चानि दूरेर न्यसुनरु गांमुच़ बो,
शाम मन्दिनिस कुम गोंमुतहासपोह।
लोलु नारन कोर मे बे दोद कृष्णा ॥०॥
च्युय यौनुक्य नीदन हुंद कुख सार,
पृथ्वी च्युय वालान पापुक्य बार।
पोशान मंज़ कुख च़, अंहलार कृष्णा ॥०॥
सांसिल हुय प्रारान कृष्णु मंदर,
मनि कुम सख कुकिहन श्याम सोन्दर।
दिलु मे मोरली गछ़ वे आज़ार कृष्णा॥
नकि राधायि वोज़ फ़ंरयाद कृष्णा ॥०॥

चान्य पछ़

पछ़ रछ़ुन पछ़ पोशिनावुम पछ़ मे चान्य,
यछ़ वछ़म, यछ़ रछ़रावुम यछ़ मे चान्य।
यछ़ तु पछ़ इति कुम तु कुस अदु याछ़कान
कोंति न मे वनियर लोर सांसिल पछ़ मे चान्य ॥०॥

जय मांज ज़ाला

ज़ाला च़ु छुख मांज न्यरमलय,
पाद हय छ़लय, रोनि पाद छ़लय।
माता में कल चोन्य प्रय पलय॥
पाद हय छ़लय रोनि पाद छ़लय॥

ख़ुवि चोन असथान शूभिदार,
थज़ुरस च़ु माता शान्दार।
रूफ़ चोन सोन्दर कोमलय॥०॥ पाद....

मन प्रेयम सर गात गोथ करान,
ज़ेरि लोल ओश नेत्रव हरान।
दर्शुन दि मांज बेमार बलय॥०॥ पाद....

छुख मांज ज़गतुच कर दया,
आमुत्य गदा छी कर कृपा।
ज़ारी करान च़रनन तलय॥०॥ पाद......

मायायि ज़ालन आवुरांव्य,
मुह छ़टि तु अनि गटि वति रांव्य।
माता च़ु मोकलाव कनि छ़लय॥०॥ पाद....

अज्ञानकुय असि वेह तु रेह,
च़ंदुनुच वे शेहलथ मांज हे।

शोंहलावतय अमृथतु ज़लय ॥०॥ पाद हय...
हेरि चानि खसि युस पोव पोव,
नागु चानि युस वसि पोव पोप।
गथ प्रावि युस ग्रावि डेंडि तल कलय ॥०॥ पाद....
छम नेह नेन्द्र पापव निसुव़,
बेंयि छम कोकर्मव बोद् खेंसुव़।
वथ हाव वीत लाग अठकलय ॥०॥ पाद...
दितु मांज भंखती फोलि मे मन,
गछ़तम मे बखशिथ गछ़ु प्रसन्न।
नतु कुस सन्यम अन्दरी गलय ॥०॥ पाद...
छुस गुल्य गंन्डिथ बन्दुगी करान,
क्षणु क्षणु छु "सोयिल" नाव सोरान।
दिम छ्वसबंयिनु स्मरणि डलय ॥०॥
पाद हय कलय, रोनि पाद कलय॥

चोंन्य सथ

चोंन्य सथ ज़खुमन छाकन बुलगार छम,
चोंन्य सथ कठिन्यन गर्‌यन मज़ यार छम।
योसु मे हंरव्य हेरव्य छय करान मठिमठि
चोंन्य सथ न्यायन अन्दर व्यस्तार छम ॥०॥ दिवान॥
"सोयिल"

वथ हाव ही भवांणी !

तर्ज़ :- (पर्वतों के शिखरों पर शाम का बसेरा है)

सथ रछ, सथ छुम चोन्य वथहावहीभवांणी,
अमरुथ्यत वर्शुनकर, दर्शुन दि राजरांनी॥
मुहु मायायि वून ज़ाल, लमन वोल आसिनाल,
काम, क्रूध ज़ालान ताल, कैंह नय छिनु ज़ालांनी॥
अतुगथ ज़न्मन हुंद, वर फेर कर्मन हुंद।
फल छुम नीचन हुंद, अरसर कर वांनी॥
यछ पछ बस छुम चोन्य, चुय छख गमखार म्योन्य।
तस स्वदान कर्मय लोन्य, अथ यस च डालांनी॥
सोन्दर रूफ चोनुय, शांन्ती करवोनुय।
मोखती दिववोनुय, बैयि कुस चोन सांनी॥
छोन नोन छुस मंदछान, पूज़ पाठ, तप तय ध्यान।
छुम योहय यंच अर्मान, छुस नु कैंह ज़ानांनी॥
चन्द्र पोरि चोन अस्थान, अमरुथ्य जांगरावान,
असि ति वोन्य करतु कल्यान, भवणी शोरी सांनी॥
पापन नेंदारन वर, सुज़राव ज्ञानुक्य बर।
"सांयिलस" प्यठ दयाकर, डेडि तल छु प्रारांनी॥

मे छम चोन्य माय ज़गत माता !

गनेयम कल सनेयम राय ।
मे छम चोन्य माय ज़गत माता ।
दितम पनुन्यन पछन तल जाय ॥०॥
मे छम चोन्य माय ज़गत माता ॥
त्सु तुलमुलि छख बिहिथ सनिदान,
करान ज़गतस त्सु छख कल्याण ।
बे पायन छख करान बोपाय ॥०॥ मे छम.....
युसुय नावि चानि नाग बल तन ।
सपुनि तस शोद त न्यरमल मन ।
बलन तस दोद त हुरि तस आय ॥०॥ मे.....
चनय यिम चोन चरण अमरख्यथ,
तिमन टोठक त्सु रछिहिर सथ ।
गल्यख अद दय चल्यख अद छाय ॥०॥.....
त्से निश माता यिवान लारान,
शुर्यन ज़ोरी त्सु छख बोज़ान ।
त्सु छख सारिन्य करान पोज़ न्याय ॥०॥ मे.....
छि अस्य पापी छे शरमन्दगी,
करान मांजी छि चेय बन्दगी ।

दयायि चानि नेरि प्रकरंच ग्राय ॥०॥
में छुम चान्य माय ज़गत माता।
च़े शेंहजन बोनिलुय तल वास,
छि कम कम शेरि बबर च़ेय दास।
शिहिलि कोन्ड मांज शिहिज चोन्य शाय॥०॥..
छे कुलि आलमुच च़े सरदारी,
करान व्यन्ती च़े छी सारी।
छे सन्तापुच में ग्रकुवुन्य क्राय॥०॥ में.....
न छुम भंकी न छुम श्रद्धा,
न ज़ानय तप न कांह पूज़ा।
बन्यम नावु चानि मोकलन पाय ॥०॥...
"सांचित" आस चु गन्ज़रुम दास।
में प्रथ विज़ि मांज सन्मोख आस।
न छुम तेति न कांह परवाय ॥०॥
में छुम चोन्य माय ज़गत माता॥

चोन्य सथ

चोन्य सथ म्यान्यन अमारन रोछदर,
चांन्य सथ अनिगंट्य शबब पत नान संहर।
योस में गफ़लच हुन्ज़ न्यसुर कासान तुलान,
चोन्य सथ पज़रुच सतुच कतु तय कहर॥
— "सांचित"

९ "मोंज ज़िष्टाँय आस दसबस्त लो लो।"

मांज ज़िष्टांय आस दस बस्त लोलो,
प्रान वन्दुयय ज़ार बोज़ुनस त लोलो।
पान आलवय छुम सु दर दस्त लोलो॥०॥
प्रान वन्दुयय ज़ार बोज़ुनस त लोलो॥
चानि दर्शनु पाप शाप सपदान दूर,
चानि परतव अनि गटि मंज़ फोलान नूर।
आस बन्दगी छुस बे बेकस त लोलो॥०॥—
ज़ेठु ब्रसवारि दामन रोंट मे चोनुय,
हाल अहवाल ज़ानवुन्य वख सोनुय।
पांयि लगहय ज़ीठ्य यारस त लोलो॥०॥—
मनु मन्दुरस मंज़ आसन बे थावय,
येमि बदुनुच चम तथ्य वधरावय।
तूफ़ ज़ालय खूनि जिगरस त लोलो॥०॥.....
डल बठि प्यठ मनु तारि नाद लायय,
चानि आंगनु भंकी साज़ वायय।
पनुनि सुमुरनि कुन कर मे मस्त लोलो॥०॥
मांज नादान शर्यसय प्यठ दया कर,
ज्ञानु दान्ती आर्तिस प्यठ कृपा कर।

करत अनुग्रेह दिल छुम मे खसत लोलो ॥०॥
प्राण वन्दु यथ ज़ार बोज़ुनसत लोलो॥
चानि स्यद पीठि सन्तुष्ट सपद्यम मन,
ज़न्मन हुन्ज़ि यात्रायि सपद्यम छ्यन ।
ज़लि मे ज़नमुक खुर कर्मसत लोलो ॥०॥
छुम नु अनमान जानुकोत पूज़ातु पाठ,
मुहु मायायि कोरनस धर्मु कर्म काठ ।
सथ संमीर छुय चान्य सायिलसत लोलो॥
प्राण वन्दु यथ ज़ार बोज़ुनसत, लो लो॥

—

जय मांज शारिका !

पास कर दास छुस चोन छुम आसर,
वार बोज़ ज़ार पार करने आस।
मांज शॉरिकायिय छुख दया सागर॥
वार बोज़ जार पार करने आस ॥०॥
सथ छुमे चांनी सन्तुष्ट रोज़तम,
बोज़तम तु वनु हय अहवाल सोर।
बोज़िमा ब्यारव बनु कस छुस बे लाचार॥०॥
आश छुम तु गाश फोलुनय छुस लारान,
प्रारान कर दिख दयायि दान।
दितु मे ति केंछा अमि बडि अम्बार॥०॥
वार बोज़—

छुम दोखौ तु दाद्यव नाल ज़न वौलमुत,
गौलमुत हन हन शीन ज़न छुस ।
पनुन्यन तु परद्यन निश गौमुत नाकार ॥०॥
संसार ज़ालस मुह जंजालस,
ज़न क्रुड ज़ालस वलुनय आस ।
विपर्यव कौरमुत क्याज़ि छुस आवार ॥०॥
मन छुनु डंजि मे अख पल रोज़ान,
बोज़ान कोनु छुख छुस वरफ़तार ।
कर क्याह मार, गोस समयिकि व्यवहार
नकुवन्य नारन अन्दरी ज़ौलुस,
गोलुस लूभन तु क्रूधन पूर ।
संतापन छेठ कंड कूत काले प्रार ॥०॥ वार...
सर्व सिद्धि दायिनी, महा भय नाशिनी,
छुख ग्रेह पीडा निवारिणी ।
छुख त्युथ पापन करुवुन्य समुहार ॥३॥
वन्ध तय बोय यार दोस छिम गेलान,
तेलान छुम क्याज़ि छुस बे अन्ज़ान ।
मोकुलावि संकट, मंज़ कर मे कैंह चार ॥०॥
दूर कर मे अज्ञान आलवय दोद्य प्राण,
जिगरकि खून ज़ाल्त शमादान ।
सानि फौलनुय हन्द गरय मोरल्त ज़ालार ॥०॥

मीठ्य मांज डिसुहा चान्यन वतुनुय,
कथुनुय चान्यन रीतु करुहा ।
मनुचे भावनायि क्याबुहथ फलुहार ॥०॥
अन्तु रोस सोंदरा ज़न छु यि समसार,
नाबु कारु छुस मांज कति लबु तार ।
दितु मे ति दर्शुन यव तरु बु ति तार ॥०॥
ज़ानु कति पूज़ा लीला परु क्याह,
स्वरु क्याह बेसबर न्योनुय नाव ।
सहस्त्र नाम क्या सना गव महिमावार ॥०॥
फेरान अन्द्य अन्द्य छुस बु पोशि गंध हाथ,
वन्द्य दन्द्य चोनिस परबतस ।
तोलु सान गोण चोन्य छुस ग्यवान
वारु वार ॥०॥
छुस बु ति जगतुक बल्य अख जान्दार,
शान्दार मोज़ी "सायिल" मे नाव ।
करतय मे ति भक्तयन अन्दर शुमारु ॥
वारु वोज़ ज़ारु पारु करुने आस ॥०॥

सर्व सिधि दायिनी, महा भय नाशिनी,
ग्रह पीडा निवारणी, श्री शारिका
भगवती ।

ज़ारी बोज़तय ज़ारिये!

पम्पोशि पादन लगुहोय पारी।
ज़ारी बोज़तय ज़ारिये ॥
मांज भवान्य आत्मुच छुय सरदारी ॥०॥
ज़ारी बोज़तय ज़ारिये ॥
दोखुज़द लारान ननुवोर्थ आय,
पाय कर सोनुय अन्जरावन्याय।
वेय रोस बोज़ि कुस सोन्य वील्ज़ारी ॥०॥
ज़ारी बोज़तय ज़ारिये ॥
येलि पछि पम्पोशि पूज़ा कर हय,
पर हय सहस्रनाम ज़ाल हय दफ़।
स्मरण करनुच दिम मे गाटुजारी ॥०॥
ज़ारी बोज़तय ज़ारिये ॥
मन छुम चञ्चल कुनि छुमन अठकल,
बल छुमनु कर हो तफ़ तय ज़फ़।
शुयं छी मांज छुख कल्याणकारी ॥०॥
पापव वोलुम अन्धकार कर क्याह,
पर क्याह शास्त्र तु कति छुम ज्ञान।
ज्ञान क्यन बरनुय मन्त्रराव तारी ॥०॥
ज़ारी बोज़तय ज़ारिये ॥

समसार बांड़्यगार वति छुम डालान,
ज़ालान छुम क्रूध मुहे तु अंधकार।
मूर्खस अहम् छुम मैं गोमुत जांरी ॥०॥......
शुर्य योंद आसन अनज़ान नादान,
हावान वथ छुख करान अथुरोंट।
दर्शुन छुख दिवान बेंयि करान यांरी ॥०॥......
गोंण चांन्य ग्यवनुक यंच़ छुम मैं अमान,
शान छुय थज़ मांज छुख शान्दार।
बोंड्ड छुमनु बातान छुम शर्मदांरी ॥०॥......
कनि डेडितल छुस बोंज़तम नाद,
शाद दिल गछिहे कासतम ब्याद।
संताप सूत्य छिम मैं अशकी टारी ॥०॥......
न्यर्मल मन चोन शीतल स्वभाव,
अभाव भंक्ती हुंद छुम अभाव।
नाव चोन भंक्तयन कासुवुन खांरी ॥०॥......
त्रेंयलूकी हुंज़ रक्षा मटि छुय,
हटि छुय सोंन्य माल ब्याह नांपन।
डेकि छुय चन्द्रमु तु जामु ज़रकोंरी ॥०॥......
वांसि रोंट मैं दामानु चोनुय वांसिल,
"सांयिल" छुस सवाल बोंज़खना।

गथ बो करहय दितय राहदारी ॥बो ज़ारी॥......

जय श्री रामजी की!

करुन रामु रामु छु परिलूकस बनावान,
अकुय रामु नाव छु भक्तन मूक्ष दावान।
बं छुस पादन तलुय दारिथ पनुन सुर,
दयाँ कर "सांयिलस" दुख चुय दयावान॥

(रामु लीला)

श्री रामु क्षणु क्षणु छुस में चान्य कल।
परमु सौन्दर छुख चु परमु न्यरमल॥
मोख हाव बेंयि दिम धर्मुक बल ॥०॥
परमु सौन्दर छुख चु परमु न्यरमल।

चान्य गोण छुय ग्यवान नारद तु व्यास,
चान्य गोण छुय ग्यवान तुलसीदास।
वाल्मीक ऋषिसुय म्यूल रत फल ॥०॥...
परमु सौन्दर छुख चु परमु न्यरमल।

कांमना मनुची छि तस गछान स्यद,
दर्शुन सुय लबान न्यरवान पद।
चान्य स्मरण युस करि अख पल ॥०॥
सोख लबान नार तस बनान गुलज़ार,
भवसागरस सुय छु लबान तार।

जाय यस च़ु दिख पादि कमलन तल ॥०॥—
परम सौन्दर छुख च़ु परम न्यर्मल।
लछि नावि ग्रन्ज़ रंस्यती छि चांन्य रूफ़,
छी भंक्तुय ज़ालान मनकी दूफ़।
पूज़ि लागान छी ब्यल त मोदल ॥०॥....
सुबु शामु चेय पनुन आगु ज़ानिथ,
युस मनु रूपी नोट फ़ांनिथ।
चैय सोरी तु चलि तस मनसुयमल ॥०॥—
संतोषि ड्रूरिस युस दियि न्यन्द,
आनन्द बनि तस परमानन्द।
वैरि चानि युस करि प्रंयमु पोशि थल ॥०॥....
चानि मायायि बिह्रा छुस ब अन्ज़ान,
ध्यान चोन धार हा कुम कति ज्ञान।
वथ हाव "सांयिलस" हुम न अठ कल ॥०॥...
परम सौन्दर छुख चँ परमु न्यर्मल।

चान्य सथ

चांन्य सथ रोज़ुन्य गछुम बस चांन्य सथ,
चांन्य सथ अठकल तु अथुवथ चांन्य सथ।
योसु मे भवुसर तारि थफ केयं केयं अं...
चांन्य सथ छुय सांयिलस ...

जय हनुमान की !

तर्ज़ :-(धीरे धीरे बोल कोई सुन ना ले....)

वीर भद्र कासुनुन दुख आसि भय,
पवन् पुत्र् हनुमान् भंञ्यनय जय।
भक्त्यन छि गरि गरि चानी लय॥
पवन् पुत्र् हनुमान् भंञ्यनय जय॥०॥

यैति आसि श्री रामु सुन्द कीर्तन,
तति आसि बलबीर् सुन्द वर्णन।
दर्शन् चानि गछि पापन क्षय॥०॥ पवन् पुत्र्..

चानि डेडि तल युस छु लायान नाद,
बोज़ान तस छुख चुय फ़र्यियाद।
सोखु मोख्, तस गछान मन्ज़िल तय॥०॥......

पज़ि मन्, यैछि पछि आयि लारान,
रामु रामु कैर्यथुय ध्यान धारान।
पनुनि भक्ती हुन्द दित् असि पय॥०॥.......

छालि अकि चैय कोरुथ समन्दर पार,
रावुणस त् लंकायि कोरुथ समुहार।
राक्षिसन प्रलय गव चानि ग्रज़नय॥०॥.....

नामु स्मरणि चानि मन छु हर्षान,
दोख चलान अन्द् वन्द् सोख छु वोपदान।
शोंसी छि सपदान स्यज़र् पज़रय॥०॥....

जय शिव शंकर !

ड्यकुक चन्द्रम् छु अज्ञानुच झ़ायकाज़ान,
हट्युक वासुक दोख़न पापन मिटावान।
जटिच गंगा दिवान छुय अमरथुतुकसग॥
अथुक त्रिशूल भक्तथन तार् तारान ॥०॥

ॐ

च़ु छुख भक्तथन रछान हो शीव् शंकर,
च़ु छुख दासन दया कर्‌वुन हरी हर।
च़ु छुख ना नील्‌कण्ठ कैलास् वासी॥
बे छुस "सोयिल" दया सागर् दयाकर॥०॥

ॐ

शिव लीला—

बास सनमोख़ त् कास अर्‌सर् लोलो।
पांय लग्‌यो शिव् शंकर् लोलो॥
पाप् सर्य गोस छुम ज़र् ज़र् लोलो।
पांय लग्‌यो शिव् शंकर् लो लो॥०॥

ज़न्मन हन्ज़ यात्रा मोकुलावतम्,
येंमि अत् गत् लिछ्नि च़्यय मुच़रावतम।
अव् द्यव् तर् येंमि भव्‌सर् लो लो॥०॥....

कैलासस प्यठ चोन आसन ज़ान,
दुख् त् भक्तन पाप तय शाप कासान।
चोन अनुग्रेह अछि गर् गर् लो लो॥०॥—

नील कण्ठ, छुख पृथ्वी वालान बार,
रक्षपाल छुय आसुवुन भीषण सार।
अमरनाथुके अमरेश्वर, लोलो ॥०॥
पोयं लगयो शिव शंकर लोलो।

छुव बरान प्रय शक्ती सातुसातय,
दीन, दयाल छी वनान अनु दातय।
चानि दर्शनु, चलि मर मर, लोलो ॥०॥.....

चोन वासुक ज़गतुक बोड रछदर,
छुय त्रिशूलुय भूमिकायि हुंद यावर।
जीट गंगा छुये वसान जर, लोलो॥०॥......

शंखु नादु लय डाबुरि स्वरु साज़य,
वतु फ़ोरान चानि हीमालु राज़य।
वनतु "सांयिलु" गोण कृत्य पर, लोलो॥०॥
पोयं लगयो शिव शंकर, लोलो॥

चोन नाव

मायि हन्द्य आगर ख़ज़ान, अबशार हाथ चोन नाव,
नूर बर्य मुत्य कोहतु संगर, सोंज़लन ख्यठ चोन नाव।
नाव चानि दंदवनन बुबराय लगि यम्बुरज़लन।
नाव चोनुय शुहुल शबनम, मुश्किलन हल चोन नाव॥

"पार्वती शंकरस लोल् नाद लायान"

यैंति योर दुर्थर चालु कमि हालो।
मोनि फीलिनुय गरय मालो वे ॥
ही शिव शंकर यित् म्यानि सालो।
मोनि फीलिनुय गरय मालो वे ॥०॥
प्रांयं प्रांयं कोरथम मन मतवालो,
अगि हुन्दि टाठि रछिपालो वे।
खीर खण्डु नाबद बर्यो थालो ॥०॥.......
चॉनि रोस रोज़िकति डंजि खयालो,
चेंय वरांय छुम यिवान गालो वे।
गज़ चम वलवुन छुख मृगशालो ॥०॥.....
कोलास कोह्कि त्रुज़गथ पालो,
गौरी हुन्दि हा लालो वे।
मय कास ज़्य कर दीन दयालो॥०॥.......
अमरनाथुकि ननि शिवालो,
नील कंठ् अनतम छालो वे।
चुय छुख महादीव चुय महाकालो ॥०॥...
दर्शन चानि फोलि संगर मालो,
दूर चलि पत मुह ज़ालो वे।
"सोयिलस" चय चठ समसार ज़ालो ॥०॥....
मोनि फीलिनुय गरय मालो वे ॥

" शिव शंकर हय आव सोनये "

संखियव कंथतवे लोल वनुवोनुय,
शिव शंकर हय आव सोनुये ।
रोशि अंस्य करहोस पोशि वरशोनुय॥
शिव शंकर हय आव सोनुये ॥०॥
त्रीभुवनु सारस कलमालु नांली,
सूर्य किस संगी सोरिये ।
महिमा अंम्यसुन्द कंम्य नय ज़ोनुय ॥
शिव शंकर हय आव सोनुये ॥०॥
अथि त्रिशूल हाथ डाबरु वायान,
हटि कुस वासुक नोलिये ।
तीन कुय सांती सूर मलवोनुय॥
शिव शंकर हय आव सोनुये ॥०॥
सुह मुसला कुय पानस वंलिथुय,
जटि कुस गंगाधारिये ।
त्रेयमि नैत्र जगुतक्य पाप गालवोनुय॥
शिव शंकर हय आव सोनुये ॥०॥...
सूर मोत शूमान प्यठ क्रष्टबस तय,
दीवता खोश की सोरिये ।
"सांयिल"! सोखकर कु सोस कर वोनुय॥
शिव शंकर हय आव सोनुये॥०॥.

नूर बंयँत्या कति चांन्य जाय !

शिव शम्भू, स्यानि सूर मति,
नूर बंयँत्या कति चांन्य जाय ।....
सूर मति क्रारथ बंवति वति ॥ ---- नूर बंयँत्या
नूर बंयँत्या कति चांन्य जाय....
नूर बंयँत्या....
प्रथमु पोशन मालु कंयँ कंयँ,
प्यालु मंयँ मंयँ थोव्यमय !..... प्यालु मंयँ मंयँ
होलु क्रायस लोलु चानि वति ॥
नूर बंयँत्या कति चांन्य जाय.....नूर बंयँत्या
कलि चानि गोम क्रारस मे पोह,
दोह गोम कोह किथु व्यतरावो.....दोह गोम....
बनतु ल्यूखुत क्याह छै स्यानि पति...
नूर बंयँत्या कति चांन्य जाय.....नूर बंयँत्या....
अनज़ोन्य मंज़ गोम लोकुचार,
यावनु लंत्य मे बार ..... यावनु..........
दर्शनु चानि वांस लसि रथि।
नूर बंयँत्या कति चान्य जाय.....नूर......
वांलासु कोहं किन्य होम्य वथ,
रटु न्यथ दामन चोन..... रटु न्यथ......

वन्, वन्, फेर्, अमि ज़ागरति ।
नूर् बेर्यत्या कति चांन्य जाय ...... नूर्बेर्यत्या...
चांन्य नाम् स्मरणा युस करि,
नार् नरकुकि दज़िमा...... नार् नरकुकि......
भाग्यवान बनि चानि सति ।
नूर् बेर्यत्या कति चांन्य जाय ...... नूर् बेर्यत्या...
यंङकाल वोतुम मे प्रारान,
हारान अंछिवुय रवून ...... हार न......
लार् कोंत वार् बनत् कुस ज़ु करि ।
नूर् बेर्यत्या कति चांन्य जाय...... नूर् बेर्यत्या...
आर यियनय ज़ार् पार्, बोज़,
सन्तोष्ट "सोयिलस" रोज़......सन्तोष्ट......
मार् गोमुत छु चानि मारमति ।
नूर् बेर्यत्या कति चांन्य जाय ...... नूर् बेर्यत्या...

जय गंगादर !

गंगादारो गंगा चांन्य हाथ छे असि सोख,
जटादारो छु वासुक असि रटान दोख ।
कृपा करतम ज़ु, कुस कल्याण कोरी,
नज़र त्राव "सोयिलुस" बनि प्रथ पासु हरमोख ।

त्रिज़गतपालु दर्शुन हाव !

ही शिव शंकर दीन दयाल,
त्रिज़गतपालु दर्शन हाव ।
हीरि छुय वासुक तोनि मृगशाल ॥
त्रिज़गत पालु दर्शुन हाव ॥०॥
कल मे गनिमुच़ कुम यच़काल,
मुहने ज़ालु मोकलावतम ।
च़ुय छुख रछिपाल च़ुय महाकालु ॥०॥....
ब्रह्मासनु जटि छय गंगदार,
गोमुत मार कुस बेकस ।
बसमादार छेय नाल्य रोन्ड मालु ॥०॥.....
त्रै नेथुर नोन छुय चोन खतुखाल,
रछहथ नालु आलवय पान ।
रफ़ हाव मोकुलाव कष्टुनि ज़ालु ॥०॥....
चानि दादि गोमुत मन मतवाल,
कोलास बालु किन्य दिमय वेन्य ।
ही वटकनाथु यितु म्यानि सालु ॥०॥ त्रिज़गत..
मुर्ख बोज़ किन्य बेय कुस दिवान नाल,
ही मुख्याल रक्ष धवत ध्यान
"सांयिलुन" हाल वुछ छुय सै बे हाल ॥०॥ त्रिज़गत....

भय कासवुनि शिव शंकर, जय जय !

शयि शयि छ़ज़िथ असि छु़ चानी शय।
भय कासवुनि शिव शंकर जय जय॥
सुबु शाम राथ द्यन बस छु़ चानी लय,
भय कासवुनि शिव शंकर जय जय॥७॥
ही सदा शिव दुख च़ु कल्याणकारी,
त्रन भवनन हुन्ज़ छय चे मटिदारी।
ही तार तारवुनि कति लबु चोन पय॥
भय कासवुनि शिव शंकर जय जय॥८॥
अमरनाथु नीलुकंठ शूभिदारो,
जोगि रूपु आसवुनि बसमदारो।
गंगादारो कासुनुन दुख ज़य॥
भय कासवुनि शिव शंकर जय जय॥९॥
ही त्रिशूलदारी पापन क्षय कर,
राक्षिसन गालवुनि भक्तन प्रय भर।
ज़गि पालवुनि लछि नावि दुख बोड दय॥
भय कासवुनि शिव शंकर जय जय॥७॥
नासुक चोनुय कष्ट संकट च़टि,
दोख च़लि पोत खोरि गाश यियि अनिगटि।

यात्रा ज़न्म ज़न्मन हुंज़ गछि तय ॥
भय कासवुनि शिव शंकर जय जय ॥०॥
भ्रष्मासन् टाटि ही जटादारय,
नखि छुय सारि ज़गतुक गोब बारय।
ही न्यराकार तुख न्यर लीफ न्यर भय ॥
भय कासुवुनि शिव शंकर जय जय ॥०॥

ही शिव शंकर !

ज़ार बोज़ भंक्तयन दि तार भवसागर,
ही शिव शंकर, ही शिव शंकर।
चैय रोस बैयि कस वील ज़ोरी कर ॥
ही शिव शंकर, ही शिव शंकर ॥०॥
ही नाथ आसवुन च़ काल समहारी,
कल्याण कारी कास असि भय।
चैय निश छि नंन्य टाकार लोल आगर ॥
ही शिव शंकर, ही शिव शंकर ॥०॥
हटि छुय वासुक पॉपन गालवुन,
जटि छुय गंगा फिरान अमरथथ।
अथि छुय त्रिशूल सोखकर गर गर ॥
ही शिव शंकर, ही शिव शंकर ॥०॥

चोक मोंदुर, पोंज़ अपुज़ सोन छुख ज़ालान,
विज़िविज़ि असि छुख शान्ती दावान।
पऺज़ असि चोनुय तु चोनुय आसर्॥
ही शिव शंकर, ही शिव शंकर॥०॥
कोंलासस प्यठ दुन्याह ज़ालान,
पालान नित्य नियम करान तोता।
संसार्य मनुषन कासान अर्सर्॥
ही शिव शंकर, ही शिव शंकर॥०॥
ही वटकनाथु बोज़ ओंचर म्योनुय,
च़ुय छुख न्यरवान् पद बखशिवोनुय॥
अठकल दि "सांयितस" युथ करि हर् हर्॥०॥
ही शिव शंकर, ही शिव शंकर॥

चोन नाव।

नार् मनकलि शोलवुनि क्युत -
शिहुल शेहजार चोन नाव,
अड् फल्यन दूंयन फुलय
छुय सूंत्य छोंहजार चोन नाव।
लोलु मतिनुय मोंयि हतिनुय सथछे चोनी ताअर्द,
मोसम्यन लाव्यन अुमारन फल तु फलदार चोन नाव।

सत गोर

गोर छु सत गोर गोरु सुंद कर हा ध्यान,
गोरु वन्दयो च़रनु कमलन बे टांठ्य प्राण।
गोरु वोपदीशि मोकलान ज़न्मुच हाने॥
गोरु वन्दुयो च़रनु कमुलन बे टांठ्य प्राण॥
गोर छु अन्धुकारस मंज़ गाशी गाश,
गोर छु नज़ुरन सान्यन कड़वुन वाश।
गोर छु अनज़ानन करुनावान ज़ान॥०॥ गोरु.....
गोर छु ब्रह्मा आसवुन गोर महीश्वर,
गोर छु विष्णो बासवुन ज़गत ईश्वर।
आद्य सुय तय,अन्त सुय,सुय दर्मियान॥०॥ गोर.......
त्रन भवुनन हुंद छुय सुय आधार,
सुय न्यराकार ज़गुतुक पालनहार।
सुय ओंकार शास्त्र त वीद पोरान॥०॥.......
मुह बान्धवानु ज़ोलान चेंदवुन गोर,
न्यर बन्धन, न्यर लीफ, शांत सोन्दर।
ऑन्दर नेबरय प्रोखटुय सुय दिपतिमान॥०॥..... गोर.....
मुह मायायि जालक्य गन्ड सु मुचरान,—
यैमि अतं गतॅ मुक्तिरि मूक्ष दावान।
गौव्य त मेन्ज़ रस्त बाय पापन्य सु ज़ालान॥०॥ गोर....

अंद छ येमिसुन्द दर्शनु त्रस सपदान,
मन छु येम्यसुन्द आत्म प्रकाशि प्रज़लान।
कन छि ओवान ओम् शब्दु ज्यन छे मेठान ॥०॥....
मनि कामन यस तस गोर् सुज़ रूज़, गोर्....
येम्य क्षणु क्षणु शोद्र मनु सतसंग बूज़।
गम सोरी तस गलान, सोख सपदान ॥०॥.... गोर्....
येम्य वैषयय वश करि फोनुन मन,
येम्य नु पनुनिस तु परदिस मंज़ ज़ोन ब्यन।
तुस मेशरुय येम्य तस्य सपदि कल्याण ॥०॥ गोर्....
दुय संकुचन गोर् सुंज़ अन्द वन्द आश,
गोर् संकट चटि कोरि गटि मंज़ गाश।
मुह नैन्द्रायि "सांयिलो" गोर् कु वुज़नान॥
गोर् वन्दुयो चरनु कमलन बं टोठ्य प्राण।

हा बांयजानो यितमो जल।

दम दसु मे छु बस नेय कुन कल,
हा बांय जानो यितमो जल।
हा बांय जानो वाद मो डल॥
हा बांयजानो यितमो जल ॥०॥
क्याह वं मा मंठ्यो स्वामी माय,

राय छुम चांनी हुरिनय आव।
मे छिहम् गरि गरि अंछनुय तल ॥०॥ हा.....
चानि शकलि येलि कांह छस छेशाने,
फीर्यि फीर्य तस्य कुन छस वे वुछान।
बति पकुवुन्य छिम बनान पागल ॥०॥ हा.....
दित दर्शन छुम मे आमुत लोल,
होल मे गोमुत छुमे यंत्र कोले।
चोनुय ध्यान छुम अख अख पल ॥०॥ हा
फीर्य फीर्य छुस वुछान बरस्य कुन,
बरु छस सत्य हावन मन तस बलुन॥
नाहे कय कामि छुम गछान गागल ॥०॥
लोकचार छुय नाज़ांह प्यवान याद,
करान आस्य क्याह दिल औस शाद।
आस्य गछान गिन्दने बोन्यन तल ॥०॥ हा
बोय सुन्ज़ सथ तय मा लिन्य सथ,
पोशिन्य गढ़ि अदु सोय गंधि कथ।
बैनि बांयिस अख अंक्य सुंज़ कल ॥०॥ हा.....
दि नज़र दारि किन्य "सांयिल" ओय,
तारान तारान ओय पोंज़ बोय।
अंमिसुय यांत्र छुय बैनि हुज़ कल॥
हा बोयजानो यितमो जल ॥०॥

"मेखलि महाराज़"

वेल वोत तोशनुक संज़ लोंग वारकार।
शान्दार मेखलि महाराज़ नोंन द्रावँ॥
संमितव सिरियन्यव चाव करौ आर ॥०॥
शान्दार मेखलि महाराज़ नोंन द्रांव।

यैछि़ तय पछि़ यंगनि मन्डुपा शेरौ,
नेरौ लिवने चंदंन सूत्य तथ।
बुछ्त तति क्याह यिन पत मुशकनि दार॥०॥

गीर्य वस्त्र छी सोनसन्द्य बासान,
कासान मस छी वॅनान कुख जुग्य।
श्रोचि़ श्रानि यंगन्यस ज़ुख निहान वारकार॥०॥

डेंकि छुय कोंग छ्योंक सिर्यि ताबानो,
हा अलाल खानो हुरिनय आय।
रूप छुय व्रज़लान यूग्य सन्दि अनहार॥०॥

अज़ छ्य मास क्याह दींद भोंगराबान,
ज़ालान पोफ छय लोल यिसवन्द।
मातामाल हुव छी करान व्यवहार॥०॥

सोन सुन्द योनि तुलोंर गर नोवुय,
दय अन नोवुय ज़ंगि बावथ।
पंडितव त ब्रह्मनव ग्रज़ तुज यकबार॥०॥
शान्दार मेखलि महाराज़ नोंन द्राव।

अथि छय तुलमूर नाल्य वेंक्षायि ज़ूल्य,
वूल्य छय गोर् सुज़ मंग वेंक्षा ।
छुय कलस कनु टोपु सुत्रि स्वाह शमिदार
शान्दार मेखलि महाराज़ नोन द्रीव।
वीद पंथ पंथ छी कन ओचरावान,
कार छय प्रारान यार बल वस।
"सायिल" साद फुटजि शेरी
शान्दार मेखलि महाराज़ नोन द्राव।

मांन्ज़ि महारेन्य

रंगि नम अज़ हतय असवुनिये,
बडि मालिनिच मांन्ज़ि महारेंनिये।
कोमल अथु खार कांडि नंनिये ॥०॥
बडि मालिनिच मांन्ज़ि महारेंनिये॥
छी ज़ें वस्तुर लागुन्य किथ्य जान,
यिम ज़ें आसनय सोनसन्द्य बासान।
छुय तुलुन फोटु ज़ें वोड नंनिये ॥०॥
बोडि मालिनिच मांन्ज़ि महारेंनिये,
करतु पालिश नमन, दंदन करनुरुशज
लागि रोप तनि सोम्दुर मखमल ।

वाजि अथ आसुनय चें शूबवुनिये ॥०॥
कूत्य शीतल वारिव्य बांच चोन्य,
सांजिबरख तोत पनुनी कमुलांन्य।
की छै मीठ्य मीठ्य बूज़न सनिये ॥०॥
हश हुहुर चोन करुनय इन्तज़ार,
हैवरन बुछ कोताह आसि चाव।
छुय पगाह गछुन नार वुज़मंज़िल ॥०॥
व्यवहार चोन एम०ए० वोलिस सूत्य,
बुछ तमिस संज़ जानजान गोफ कूत्य।
शालुमारन फेरि गतुरेनिये ॥०॥
हशि तु ज़ामन सूत्य चोन व्यवहार,
खोश गंडिथ चुय कंयजि रुत [illegible]॥
अद वनुनय छुख चु रंबवुनिये ॥०॥
शर्मदारी छि सोरी खोश गछान,
लोलु सूती रुति नोशि छी रछान
योसु आसी साफ तय पूर्ननिये ॥०॥
अज छे "सांयित्न" छुय करान हिदायत,
कंवांदु फांशनस रोज़ुन गछि पथ।
योद करख ती तु छुख स्यान्य बेनिये ॥०॥
बडि मातिनिच मांज़ि सहारेनिये।

मौन्ज़ि महाराज़

शोंकुलम केंथशुय संज़ होत सौंज़य,
मौन्ज़ि महाराज़स मुबारक ।
वनु बन ग्रज़ वंछु सोज़स तु साज़स ॥
मांज़ि महाराज़स मुबारक ॥०॥

नुन्दु बोन महाराज़ु सोन कोल्य तारुख,
असुवुन, गिन्दुवुन त रंबुवोनु य ।
पोफ़ि लोज मान्ज़ सांनिस यन्द्राज़स ॥०॥ मांज़ि......

बुदु तय यिस्बन्द, टिस ढिस जोरी,
छायक करनस लंज मान मान ।
चायन तु केहवन क्रख वंछु बाज़स ॥०॥ मांज़ि.....

मदनस सांनिस होवुरथुक चिकुलाव,
शुभुवन्य बराथ आसि कारन संज़ ।
बैन्ड बाजि डेडि तय स्वागत राज़स ॥०॥ मांज़ि.....

माथि मारान येलि दारस अन्दुहख,
केकन तु बर्फ़ी लगि संग मंग ।
लबि लबि सबि सबि ताज़स तु ताज़स ॥०॥...

वीगिस प्यठ येलि रोज़ख शान्दार,
खोवुर्य थवनय सोन्दर माल ।
दोद चख दामु दामु बैथि सनख बाज़स ॥
मौन्ज़ि महाराज़स मुबारक ॥०॥

"आंही"

(महाराज़न तु महरिन्यन किज़ आंही)

प्रंखटिनय पंज़ नीर्थनय, गछ न्योन्य आहा पूशनय।
न्योन्य रुम रुम छी यछान, गछ ज़िंदुगानी पूशेन्य॥
यारि यावुन मुश्किनय फोल्य नय गुलाबुक्य पोश्य बाग।
आश कोयिम खज़िनय तय गुल तु गुलज़ार पूशनय॥
ज़ुंय चांनी रुइयतन रुज़ मोहबतुच थ्यकुवन्ये मिसाल।
तुय मुबारक राज करुनस, शाद मांनी पूशनय॥
दुर्मदम आंसिन इुथकस चांनिस फोलान लोलुक असुन।
आय हुर्यनस माथि चाने सोख तु सावय पूशनय॥
पूर गछुयनय यछ दिलुच बैयि शर तु अंमान नीर्यनय।
हुन तु हावस नौसिनय, गछ दिल तु दिलदार पूशनय॥
दुन्युहस्य सोख मेथ्य दीनय, बोसु कंर्यनय शोंद रेंय।
दोंध चोत हैयनय फकथ, ओंर ज़ुव तु दोर कोठ पूशनय॥
बेंद्रि फल्यन संन सर्बछिनय, दय वखशिनय नीचन शोंज़र।
आय लेंग्यनय रुमु बैथुन बैयि सुंत्य शोंहजार पूशनय॥
ज़ांह ति पर मतु दोंछनय, आवेज़ु ज़ांह मतु थव्यनय।
लान लीरुय लीरुय थंव्यनय हुदु, कामरांनी पूशनय॥
चंदु कौन हरगिज़ मु थंव्यनय, मालु ज़र थंव्यनय वोफूर।
मुफलिसन येछुथनय करुन अथरोट, सतु च पछ पूशनय॥
पदें पूशी म्योन दय कंर्यनय, सो बोद थंव्यनय चे दाय।
स्योंद चे गंछुयनय सोंयिलन्य "आंही, सो प्रकरथ पूशनय॥